मासिक

अध्यात्म संदेश

जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक पत्र

वर्ष:2 | अंक:11 | पृष्ठ:41 | मूल्य:नि:शुल्क | इंदौर–उज्जैन | बुधवार 1 जून 2022 | ज्येष्ठ/आषाढ़ मास (4), विक्रम संवत् 2079 | ई.संस्करण

03

28

06

22
18

09

विश्व
योग
दिवस

प्रेरणा स्रोत
महासिद्ध गुरू गोरक्षनाथ जी

सलाहकार समिति
महंत बालक नाथ योगी जी
गद्दीनशीन महंत, मठ अस्थल बोहर, रोहतक
संसद सदस्य (लोकसभा), अलवर, राजस्थान
कुलाधिपति, श्री बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय (हरियाणा)

महंत पीर योगी रामनाथ जी
भर्तृहरि गुफा, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

महंत डॉ. योगी विलासनाथ जी
अध्यक्ष, श्री गुरू गोरक्षनाथ शिव पंचायतन मन्दिर (ट्रस्ट), गाळणे (महाराष्ट्र)

राष्ट्रसंत बालयोगी उमेशनाथ जी
पीठाधीश्वर–वाल्मीकि धाम, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

प्रधान सम्पादक
योगी शिवनन्दन नाथ

सम्पादक मंडल

वरिष्ठ सम्पादक
डॉ. संतोष खन्ना (दिल्ली)

सम्पादक
डॉ. विदुषी शर्मा (दिल्ली)

सह सम्पादक
डॉ. दिग्विजय शर्मा (आगरा)

उपसम्पादक
सुश्री इंदु सिंह ''इन्दुश्री'' (मध्य प्रदेश)

ग्राफिक्स
IDEAwave COMMUNICATIONS

प्रकाशक एवं स्वामी
गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन
editor.adhyatmsandesh@gmail.com

मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई–पत्र

प्रतिष्ठित लेखकों/लेखिकाओं को सादर नमन्!

अध्यात्म संदेश का आगामी **अंक 1 जूलाई 2022** को प्रकाशित हो रहा है। आप सभी से ज्ञानवर्धक, किशोर उपयोगी, प्रकृति प्रेम, तकनीकी शिक्षा, पारिवारिक संस्कार, समाज सेवा, मेरी बेटी मेरा गौरव, छोटी बातें बड़े काम की, प्रेरक प्रसंग, मेरी अविस्मरणीय यात्रा, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म पर आपके संस्मरण, कविताऐं, आलेख, लघुकथाऐं आमंत्रित हैं।

विशेष : शब्द सीमा 500–750 शब्दों के मध्य होनी चाहिए

आलेख भेजने की अंतिम तिथि 20 जून 2022

विशेष:

1. लेखक/लेखिका अपनी रचना यूनिकोड/कृतिदेव – वर्ड फाइल में टाइप कराकर ही भेंजे। पी. डी. एफ फाइल न भेजें।
2. लेखक/लेखिका अपनी स्वरचित अप्रकाशित एवं मौलिक रचना के साथ कृपया अपना संक्षिप्त परिचय, व्हाट्सप नंबर, फोटो के साथ भेजें ।
3. आपकी स्वीकृत रचना आपके फोटो के साथ प्रकाशित की जायेगी। प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देय नहीं है।
4. जनकल्याण हित में ज्ञान वर्धन हेतु यह पूर्णत: नि: शुल्क है। रचनाएँ ई–मेल: **editor.adhyatmsandesh@gmail.com** पर प्रेषित करें।

– योगी शिवनन्दन नाथ
प्रधान संपादक

गंगा दशहरा

अपने लक्ष्य पर धैर्य पूर्वक डटे रहने के साहस व संकल्प का पर्व

"स्कन्दपुराण में इस तिथि का महत्त्व बड़े विस्तार के साथ दिया गया है। इसे महान पुण्यदायक माना गया है। कहा गया है कि इस दिन विशेषतः गंगा में अथवा किसी भी पुण्यसलिला सरिता में स्नान, दान व तर्पण करने से पापों का नाश होता है और व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु-लोक का अधिकारी बन जाता है -

ज्येष्ठस्थ, शुक्ला दशमी संवत्सरमुखा स्मृता। तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चौव विशेषतः। यां कात्रिचत् सरितं प्राप्य प्रदद्याच्च तिलोदकम्। मुच्यते दशभिः पापैः विष्णुलोकं स गच्छति।।"

डॉ. साधना गुप्ता
(वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
सहायक आचार्य
(राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय)
झालवाड़, राजस्थान

गंगा दशहरा या गंगा दशमी ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जाने वाला हिन्दुओं का एक प्रमुख त्यौहार है। इसी दिन माँ गंगा का अवतरण पृथ्वी पर हुआ था,– ऐसी जन मान्यता है। इसे गंगा दशहरा व्रत या गंगा दशमी व्रत के रूप में भी जाना जाता है।

वस्तुतः गंगा दशमी का सम्बंध पतित पावनी माँ गंगा के अवतरण से है। वराह पुराण में लिखा है कि, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारी में हस्त नक्षत्र में श्रेष्ठ नदी स्वर्ग से अवतीर्ण हुई थी। वह दस पापों को नष्ट करती है। इस कारण उस तिथि को दशहरा कहते हैं। ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्त नक्षत्र, आनंद, व्यतिपात, कन्या का चंद्र, वृषभ के सूर्य इन दस योगों में मनुष्य स्नान करके सब पापों से छूट जाता है।

गंगा अवतरण की कथा – युधिष्ठिर द्वारा लोमश ऋषि से,– राजा भगीरथ गंगा को किस प्रकार पृथ्वी पर ले आये? यह प्रश्न पूछने पर लोमश ऋषि ने जो प्रसंग सुनाया वह इसकी कथा के रूप में सुनाया जाता है।

लोमश ऋषि कथा सुनाते हुए कहते हैं– धर्मराज ! इक्ष्वाकु वंश में सगर नामक एक बहुत ही प्रतापी राजा हुए जिनके दो रानियाँ थीं– वैदर्भी और शैव्या। राजा सगर ने दोनों रानियों के साथ कैलाश पर्वत पर पुत्र प्राप्ति की कामना से शंकर भगवान की घोर तपस्या की। जिससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उन्हें अनोखा वरदान दिया– उनकी एक रानी के साठ हजार पुत्र होंगे एवं दूसरी रानी से एक ही सन्तान होगी परन्तु वही वंश चलाने वाली रहेगी।

समय बीतने पर शैव्या ने असमंज नामक एक अत्यन्त रूपवान पुत्र को जन्म दिया और वैदर्भी के गर्भ से एक तुम्बी उत्पन्न हुई जिसे फोड़ने पर साठ हजार पुत्र निकले। समय का चक्र घूमता गया और असमंज का अंशुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। असमंज अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का था इसलिये राजा सगर ने उसे अपने देश से निष्कासित कर दिया। राजा सगर

ने अश्वमेघ यज्ञ किया तो यज्ञ का श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा गया और उसके पीछे–पीछे राजा सगर के साठ हजार पुत्र अपनी विशाल सेना के साथ चलने लगे। सगर के इस अश्वमेघ यज्ञ से भयभीत होकर देवराज इन्द्र ने अवसर पाकर उस घोड़े को चुरा लिया और ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। उस समय कपिल मुनि ध्यान में लीन थे अतः उन्हें इस बात का पता ही न चला।

इधर सगर के साठ हजार पुत्रों ने घोड़े को पृथ्वी के हरएक स्थान पर ढूँढा किन्तु उसका पता न लग सका। वे घोड़े को खोजते हुये पृथ्वी से पाताल लोक तक पहुँच गये। जहाँ अपने आश्रम में कपिल मुनि तपस्या कर रहे थे और वहीं पर वह घोड़ा बँधा हुआ था। सगर के पुत्रों ने – घोड़े को कपिल मुनि चुरा लाये हैं, यह समझ कपिल मुनि को कटुवचन कहे। अपने निरादर से कुपित होकर कपिल मुनि ने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को क्रोधाग्नि से भस्म कर दिया।

जब सगर को नारद मुनि के द्वारा अपने साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने का समाचार मिला तो पौत्र अंशुमान को बुलाकर सब बात बतायी और कपिल मुनि के आश्रम में जाकर उनसे क्षमाप्रार्थना करके उस घोड़े को ले आने को कहा। अंशुमान कपिल मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। उन्होंने अपनी प्रार्थना एवं मृदु व्यवहार से कपिल मुनि को प्रसन्न कर लिया। कपिल मुनि ने उन्हें वर माँगने के लिये कहा। अंशुमान बोले– कृपा करके हमारा अश्व लौटा दें और हमारे दादाओं के उद्धार का कोई उपाय बतायें। कपिल मुनि ने घोड़ा लौटाते हुये कहा कि वत्स! अब तुम्हारे दादाओं का उद्धार केवल गंगा के जल से तर्पण करने पर ही हो सकता है।

अंशुमान ने यज्ञ का अश्व लाकर सगर का अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण करा दिया। यज्ञ पूर्ण होने पर राजा सगर अंशुमान को राज्य सौंप कर गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तपस्या करने के लिये उत्तराखंड चले गये। तपस्या करते–करते उनका स्वर्गवास हो गया। अंशुमान के पुत्र का नाम दिलीप था। दिलीप के बड़े होने पर अंशुमान भी दिलीप को राज्य सौंप कर गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने के उद्देश्य से तपस्या करने के लिये उत्तराखंड चले गये किन्तु वे भी गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने में सफल न हो सके। दिलीप के पुत्र का नाम भगीरथ था। भगीरथ के बड़े होने पर दिलीप ने भी अपने पूर्वजों का अनुगमन किया किन्तु गंगा को लाने में उन्हें भी असफलता ही हाथ आई।

अन्ततः भगीरथ की तपस्या रंग लायी, इनकी तपस्या से गंगा प्रसन्न हुई और उनसे वरदान माँगने के लिया कहा। भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि माता! मेरे साठ हजार पुरखों के उद्धार हेतु आप पृथ्वी पर अवतरित होने की कृपा करें। इस पर गंगा ने कहा वत्स! मैं तुम्हारी बात मानकर पृथ्वी पर अवश्य आऊँगी, किन्तु मेरे वेग को भगवान शिव के अतिरिक्त और कोई सहन नहीं कर सकता। इसलिये तुम पहले भगवान शिव को प्रसन्न करो। यह सुन कर भगीरथ ने भगवान शिव की घोर तपस्या की और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव जी हिमालय के शिखर पर गंगा के वेग को रोकने के लिये खड़े हो गये। गंगा जी स्वर्ग से सीधे शिव जी की जटाओं पर जा गिरी। इसके बाद भगीरथ गंगा जी को अपने पीछे–पीछे अपने पूर्वजों की अस्थियों तक ले आये जिससे उनका उद्धार हो गया। भगीरथ के पूर्वजों का उद्धार करके गंगा जी सागर में जा गिरी और अगस्त्य मुनि द्वारा सोखे हुये समुद्र में फिर से जल भर गया।

इस प्रकार भगीरथ पृथ्वी पर गंगा का अवतरण करने वाले बड़े भाग्यशाली पुरुष हुए। उन्होंने जनमानस को अपने पुण्य से उपकृत कर दिया। निश्चित ही युगों–युगों तक बहने वाली गंगा की धारा महाराज भगीरथ की कष्टमयी साधना की गाथा कहती है। अपने लक्ष्य पर धैर्य पूर्वक डटे रहने का साहस व संकल्प देती है। माँ गंगा प्राणीमात्र को जीवनदान ही नहीं देती, मुक्ति भी देती है।

स्कंदपुराण, भविष्यपुराण, शिवपुराण आदि ग्रंथों में माँ गंगा की महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है जिसके अनुसार पतित पावनी गंगा धरती को पवित्र करती रही है। साथ में शिव भगवान कैसे माँ गंगा को अपनी जटा में धारण करते हैं? इसका भी वर्णन मिलता है। महर्षि व्यास ने गंगा की जलधारा और उसके रहस्य का बखान पद्मपुराण में किया है। अनुभूत तथ्य है कि गंगाजल से असाध्य बीमारियों का उपचार भी संभव है। वर्षों तक गंगा जल को रख लिया जाए तब भी न उसमें कीड़े पड़ते हैं, न ही वह सूखता ही है।

पूजन विधि– इस दिन सुबह ब्रह्म मुहूर्त में गंगा स्नान या घर पर ही गंगाजल की कुछ बूंद जल में डालकर गंगा स्नान करना चाहिए। साथ में स्नान के समय और बाद में इस दिन इस मंत्र से माँ गंगा का आह्वान करना चाहिए–

गंगा च यमुने चेव, गोदावरी, सरस्वती,
नर्मदे सिंधू कावेरी, जलोस्मिन सन्निधि कुरू।

उसके बाद पूजन करते समय **ॐ नमः शिवाय नारायणे दशहराय गंगाय नमः** मंत्र का जाप करना चाहिए। फिर यजमान को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दान करना चाहिए।

धर्मशास्त्रों के अनुसार गंगा दशहरा के दिन ही गायत्री मंत्र का आविर्भाव हुआ था।

कुमाऊँ प्रदेश में गंगा दशहरा का सम्बंध माँ गंगा के अवतरण से न मानकर दशहरा ही सम्बोधन किया जाता है। पवित्र पर्व मानकर पवित्र नदियों में स्नान किया जाता है परन्तु दशहरा का अर्थ पंडितों द्वारा निर्मित उस द्वारपत्र से होता है जो पवित्र भावना के संग द्वार के ऊपर वज्र बाधा निवारण हेतु लगाया जाता है। ब्राह्मण द्वारा एक सफेद चौकोर कागज पर विभिन्न रंगों से शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, गंगा आदि का रंगीन चित्र बना कर उसके चारों ओर एक वृत्तीय या बहुवृत्तीय कमलदलों का अंकन किया जाता है जिसमें लाल, पीले, हरे रंग विशेष रूप से भरे जाते हैं और इसके बाहर वज्रनिवारक पाँच ऋषियों के नाम के साथ निम्नलिखित श्लोक लिखे जाते हैं –

अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च वैशम्पायन एव च।
जैमिनिश्च सुमन्तुश्च पञ्चिौते वज्र वारकाः ।।
मुने कल्याण मित्रस्य जैमिनेश्चानु कीर्तनात।
विद्युदग्निभयंनास्ति लिखिते च गृहोदरे।।
यत्रानुपायी भगवान् हृदयास्ते हरिरीश्वरः।
भंगो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा।।

नोट –स्थानीय भेद से गंगा की जो स्तुति की जाती है, उसमें शब्दों का कुछ–कुछ विभेद मिलता है परन्तु उनका सार गंगा के पापनाशिनी रूप की स्तुति गाना ही है।

सार रूप में यह कथा गंगा की आराधना के संग हमें धैर्य पूर्वक सतत प्रयत्नशील बने रहने, हिम्मत न हारने का संदेश देती है जिसकी वर्तमान मानव को अत्यंत आवश्यकता है। अतः कहना होगा हमारे पर्व व त्यौहार जन–जन को सफल जीवन जीने की सरल पद्धति सिखाने का मनमोहक माध्यम हैं।

गंगा मां

डॉ. अर्चना प्रकाश
स्वतंत्र लेखन
लखनऊ, उ.प्र.

गौ मुख से निकली गंगा,
दुर्गम पथ पर निर्मल धारा।
उच्श्रृंखल उद्दाम कहीं,
पावन शान्त ललाम किनारा।

नदियाँ झरने संग बहते,
कलकल करें प्रचंड धारा।
भव्य अनंत जल स्त्रोत सी,
खेतन भरती अन्न भंडारा।

वन उपवन हरियाली महके,
पूण्य दायिनी दे कर्म सहारा।
सगर सहस्त्रो मोक्ष दे तारा,
तप भगीरथ करें सार्थक सारा।
दुर्बुद्धि कुचक्रंन मैली गंगा,
नाले कूड़े बहाये गंगधारा।
पाप नाशिनी हुई विषैली,
पाए विष से कैसे छुटकारा?

गंगा सुख सौभाग्य दायिनी ,
मैया अटल अहिवात दायिनी।
करो चाहे मैली जितनी विषैली,
सदा है आस्था विश्वास धारा।

धर्म इतिहास वेद पुरान,
गंगा इनकी भव्य पहचान।
गौमुख से गंगासागर तक,
गंगा के दिव्य रूप गुन नाम।
सरस्वती की सखी गंगा,
जननी भीष्म पितामह की।
शिव शम्भू के शीश चढ़ी,
सकल संस्कृति आलेख बनी।

गंगा गंगा जय जय गंगा माँ
पूनो कार्तिक दिन तेरा माँ।
धर्म आस्था विश्वासो की प्राण,
जन्म मृत्यु हर पल देती निर्वाण।

विश्व योग दिवस

योग मार्ग के प्रणेता

महायोगी गोरक्षनाथ

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः।।

जो साधक अपने शरीर में स्थित षट्चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र), सोलह आधार (पादांगुष्ठ, मूलाधार, गुदाधार, मेढ्राधार, उड्डियानबन्धाधार, नाभ्याधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिका अथवा जिह्वामूलाधार, ताल्वाधार, जिह्ववाधार, भ्रूमध्याधर, नासाधार, नासामूलक कपाटाधार, ललाटाधार, ब्रह्मरन्ध्राधार), द्विलक्ष्य (आन्तरिक और बाह्य), पंचव्योम (आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्वाकाश और सूर्याकाश) को नहीं जानते हैं, वे किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं अथवा योगसिद्ध हो सकते हैं?

योगी शिवनन्दन नाथ
प्रधान सम्पादक–अध्यात्म संदेश

महायोगी गोरक्षनाथ जी का व्यक्तित्व अद्वितीय असाधारण एवं अप्रतिम है। वे युग प्रवाह की दिशा परिवर्तित कर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाले, परंपरागत विचारों के प्रवाह को मथ कर उसके भीतर के सार्वयुगीन तत्व को प्रकट करने वाले महान साधक और विचारक थे। योगीराज गोरक्षनाथ जी ने अपने व्यापक ज्ञान एवं अद्भुत संगठन शक्ति के प्रभाव से सिद्धांत, साधना और संगठन तीनों स्तरों पर पूर्ववर्ती शैव, शक्ति एवं बौद्धमतों को हतप्रभ कर के नाथ–पंथ में समाहित कर लिया। गोरक्षनाथ जी ने समस्त तार्किक विश्लेषण से ऊपर उठकर 'समतत्व' की प्रतिष्ठा की। इस 'समतत्व' को ही परमतत्व परासंवित, परब्रह्म, परमपद, परमशून्य, परमशिव इत्यादि नामों से अभिहित किया जाता है।

आदिनाथ (शिव) जी के योगिक संस्करण शैव योग के परमाचार्य महामति मत्स्येंद्रनाथ जी की कृपा से उनके शिष्य महायोगी गोरक्षनाथ जी ने आत्मयोग के माध्यम से परमात्मा बोध अथवा शिवैक्य अथवा स्वरूपानुभव की प्राण प्रतिष्ठा संस्कारित की। उन्होंने योगियों के सर्वश्रेष्ठ सिद्ध मत के प्रवर्तक के रूप में जगत के असंख्य प्राणियों को गुरुज्ञान– योगबोध अथवा महाज्ञान का तत्योपदेश कर उन्हें मुक्ति प्रदान की और संसार– सागर से पार उतरने के लिए योगामृत ज्ञान की नौका प्रदान की।

महायोगी गोरक्षनाथ जी अप्रतिम योगतत्वज्ञ और महाज्ञानी सिद्ध पुरुष थे। नेपाल से सिंघल और कश्मीर से कामरुप तथा द्वारिका क्षेत्र –आसेतु हिमाचल के भूमिखण्ड को उन्होंने अपनी महती योग साधना से प्रभावित किया। निःसंदेह वे नाथपंथ के प्रवर्तक थे। उन्होंने अपने योग दर्शन और योग सिद्धांतों से भारतीय संस्कृति और साहित्य को चिर समृद्ध किया। यही उनकी अमरता की आधारशिला है।

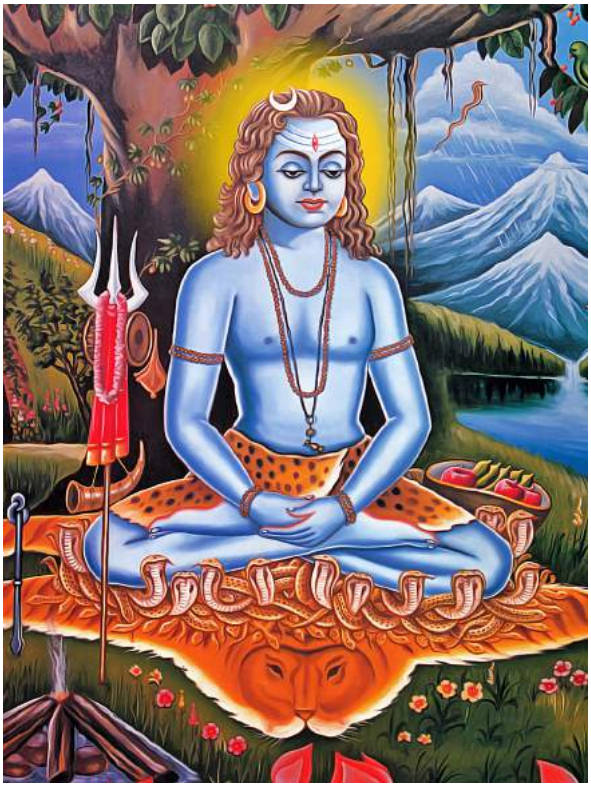

21वीं सदी में योग हमें एक बहुमूल्य आध्यात्मिक विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। योग का मुख्य विषय यद्यपि आध्यात्मिक पथ के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होना है तथापि योग के निरंतर अभ्यास से आध्यात्मिक उद्देश्यों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य को प्रत्यक्ष एवं सुनिश्चित रूप से लाभ प्राप्त होता है। योग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में शारीरिक एवं मानसिक शुद्धता और प्रबलता एक है। योग साधारण शारीरिक व्यायाम नहीं है वरन एक नवीन जीवन पद्धति को स्थापित करने का अत्यंत प्रभावकारी साधन है। योग मानव जीवन शैली की एक ऐसी अनुभूति है जिसे बुद्धि द्वारा नहीं समझा जा सकता है। योग के निरंतर अभ्यास और अनुभूति के आधार पर ही इसे जीवंत और समझने लायक बनाया जा सकता है। योग शब्द संस्कृत धातु 'युज्' से बना है, जिसका अर्थ 'जोड़ना', एक्य या एकत्व होता है। योग हमारे व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, भावनात्मक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक पहलुओं को प्रभावित करता है अतः योग का समावेश हमारे दैनिक जीवन में एक नियत चर्या के रूप में अत्यंत आवश्यक है। योग सम्यक जीवन का विज्ञान है।

संपूर्ण ब्रह्मांड, पिंड में समाहित है, गुरु गोरक्षनाथ जी ने इस सिद्धांत को सर्वग्राही बनाया। यम–नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा– बंध, षटकर्म, कुंभक, हठयोग विद्या, महामुद्राएं, कुंडलिनी महाशक्ति साधना, नादानुसंधान, ध्यान– साधना–समाधि इत्यादि अनेक विधियां नाथ संप्रदाय के संस्थापक महासिद्ध गुरु गोरक्षनाथ जी की ही देन है,जिनकी लोकस्वीकृति महायोगी गोरक्षनाथ जी को अद्वितीय, असाधारण लोकोन्मुखी महायोगी बनाती है।

गोरक्ष पद्धति में वर्णित है–

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवों दंपति सर्वदा।।
षट्शतानि त्वहोरात्रे सहस्राण्येकबिंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवों दंपति सर्वदा।।

यह जीव (प्राण के रूप में) हकार की ध्वनि से बाहर जाता है और (अपान के रूप में) सकार की ध्वनि से भीतर आता है। इस प्रकार वह सदा हंस–हंस मंत्र का जप करता रहता है। वह एक दिन–रात में सर्वदा इक्कीस हजार छह सौ हंस मंत्र का जप करता है।

अजपानाम गायत्री योगीनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतो न भविष्यति।।
कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स योगवित्।।

यही अजपा गायत्री है जिसका स्वतः जप होता रहता है। यह योगियों को मोक्ष प्रदान करती है इस गायत्री के संकल्प मात्र से ही समस्त पापों से छुटकारा हो जाता है। इस गायत्री के समान न कोई विद्या है, न जप है और न भूत–भविष्य में कोई ज्ञान ही है। कुण्डलिनी में उत्पन्न हुई यह गायत्री प्राणधारिणी प्राणविद्या है, इसको जो जानता है वह योगवेत्ता पुरुष है।

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुन्ञ्चति ।।

योगासन के अभ्यास से शरीर के रोग दूर होते हैं, और प्राणायाम से पाप नष्ट होता है। प्रत्याहार के अभ्यास से योगी मन के विकारों से छुटकारा पा जाता है।

धारणाभिमतो धैर्य ध्यानाच्चौतन्यमद्भुतम।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्मष्टाभाज्जुभम।।

धारणा से मन में धैर्य बढ़ता है और ध्यान (की साधना) से अद्भुत चौतन्य शक्ति की प्राप्ति होती है। योगी समाधि में लीन होने पर शुभ–अशुभ कर्म का त्याग कर मोक्ष प्राप्त करता है।

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगनाशक सम्भवः।।

प्राणायाम का विधि पूर्वक अभ्यास करने से सभी प्रकार के रोगों का नाश होता है।

मन की कोई स्वतंत्रत सत्ता नहीं होती है। संकल्प–विकल्प के जाते ही मन चला जाता है। संकल्प–विकल्प के विनाश से ही मनोनाश हो जाता है तथा तत्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। जैसे घी में घी मिलने से घी हो जाता है, दूध में दूध मिलने से दूध हो जाता है, उसी प्रकार अमनस्कता के स्तर पर तत्व में समाहित योगी तत्वाकार, परम शक्तिमान परमेश्वर हो जाता है। यही सिद्धमत का रहस्य है और अमनस्क योग का श्रेय है।

परम शांत, लययुक्त, विलीन, स्थिर, मन ही उन्मन अथवा अमनस्क होकर योग साधना को सिद्धि में रूपांतरित कर देता है। अमनस्क योग के धरातल पर मन का संपूर्ण सहज स्वाभाविक उन्मनीकरण ही राजयोग सिद्धि की चरम अवस्था है। यही मन का आत्यन्तिक लय है, जिसका फल है ब्रह्मतत्व में समाहित होना।

अमनस्कयोग महासिद्ध गुरु गोरक्षनाथ जी की महत्वपूर्ण देन है, जो समाधि के परे की मन की महालयावस्था है।

जिस मनुष्य के योगाभ्यासी मन ने क्षण भर के लिए ब्रह्मचिंतन में धैर्य प्राप्त कर लिया, जिसका मन क्षण मात्र भी ब्रह्मचिंतन में स्थिर हो गया। उस मनुष्य ने समस्त तीर्थों के जल में स्नान करने का फल प्राप्त कर लिया, ब्राह्मणों को स्वेच्छा से दान में भूमि संपत्ति देने का फल प्राप्त कर लिया, हजारों यज्ञों में आहुति देने का अनुष्ठान कर लिया, विधि पूर्वक सभी देवताओं की पूजा कर ली, स्वादिष्ट अन्न से पितरों को तृप्त कर उन्हें फिर स्वर्ग में प्रतिष्ठित करने का फल प्राप्त कर लिया। आत्म चिंतनरुप योगाभ्यास से ये समस्त फल तक्षण प्राप्त हो जाते हैं।

महायोगी गोरक्षनाथ जी द्वारा रचित अनेक संस्कृत और हिंदी पुस्तकों का उल्लेख मिलता है–

1.अमनस्क योग, 2.अमरौध शासनम, 3.अवधूत गीता, 4.गोरक्ष कल्प, 5.गोरक्ष कौमुदी, 6.गोरक्ष गीता, 7.गोरक्ष चिकित्सा, 8.गोरक्ष पंचक, 9.गोरक्ष पद्धति, 10.गोरक्ष शतक, 11.गोरक्ष शास्त्र, 12.गोरक्ष संहिता, 13.चतुरशित्यासन, 14.ज्ञान प्रकाश शतक, 15.ज्ञानामृत योग, 16.नाड़ी ज्ञान प्रदीपिका, 17.महार्थ मंजरी, 18.योग चिंतामणि, 19.योग मार्तंड, 20.योग बीज, 21.योग शास्त्र, 22.योग सिद्धांत पद्धती, 23.विवेक मार्तंड, 24.श्रीनाथ सूत्र, 25.सिद्ध सिद्धांत पद्धति, 26.हठयोग, 27.हठ संहिता,

हिंदी में गोरखनाथ के नाम से प्रचलित 40 रचनाओं का विवरण स्वर्गीय डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने दिया है। उनमें से निम्नलिखित 13 को प्राचीन मानकर 'गोरखबानी' नाम से संपादित किया है–

1.सबदी, 2.पद, 3.सिष्या दरसन, 4.प्राणसंकली, 5.नर वैबोध, 6.आत्मबोध, 7.अभैमात्रा जोग, 8.पंद्रह तिथि, 9.सप्तवार, 10.मछींद्र गोरखबोध, 11.रोमावली, 12.ग्यान तिलक, 13.पंच मात्रा।

योगी गुरु गोरक्षनाथ शाश्वत महा योगेश्वर आदिनाथ शिव के सच्चे अवतार थे । सभी युगों में सारी मानवता के लिए हिंदू धर्म का यह महानतम संदेश रहा है कि जगत–व्यवस्था की विभिन्नताओं के समस्त स्तरों में व्याप्त तथा उन से परे एक स्वयं प्रकाश, स्वयं सत्य परमात्मा है, जिसका जाने–अनजाने रूप से सभी मनुष्य विभिन्न पवित्र नाम– रूपों तथा अनुशासनों द्वारा उपासना एवं खोज करते रहते हैं। आदि अंत रहित जगत व्यवस्था एक दिव्य जीवन द्वारा अनुप्राणित, आलोकित तथा व्याप्त और एक दिव्य अथवा ईश्वरीय नियम से संगठित एवं शासित है।

मानव जीवन की समस्त आचार– संहिता तथा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि अन्य मानवीय संस्थाएं एवं व्यावहारिक अस्तित्व इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक आदर्श पर आधारित होने चाहिए। जड़त्व में आत्मा, अनेकता में एकता, क्रिया में स्थिरता, प्रेममयी सेवा में त्याग, यह है संसार के लिए भारत वर्ष के हृदय का संदेश। योगी गुरु गोरक्षनाथ इस गरिमामय संदेश के उन सर्वाधिक शक्तिशाली और उल्लेखनीय प्रचारकों में से एक थे, जिन्हें जन्म देकर भारत माता धन्य हुई। इनके उपदेश वर्तमान युग तथा जीवन की वर्तमान दशा में भी उतने ही उपयोगी और आकर्षक हैं, जितने वे एक सहस्त्र वर्ष से भी पूर्व थे, जब उन्हें अपने पवित्र भौतिक शरीर में लोगों को प्रेरणा देते तथा विचरण करते हुए माना जाता है। उन्होंने सर्व त्यागी योगियों की एक मठ – संस्था की स्थापना की जिसे सिद्ध– योगी, नाथ–योगी अथवा अवधूत–योगी संप्रदाय के रूप में जाना जाता है, यह आज तक भारतवर्ष की संस्थाओं में सर्वाधिक व्यापक और सजीव मठ व्यवस्था है। इस विशाल देश में कोई प्रांत या भाग ऐसा नहीं, जहां इस संप्रदाय के सक्रिय केंद्र न हों।

इस संप्रदाय में महान संस्थापक के समय से लेकर प्रत्येक परवर्ती पीढ़ी में अदभुत अध्यात्मिक शक्ति संपन्न महा–सिद्ध योगियों को जन्म दिया है। गोरखनाथ तथा उनके तत्वज्ञ अनुयायियों ने सच्चे अध्यात्म– जिज्ञासाओं को बिना किसी वर्ग, जाति तथा धार्मिक भेदभाव के योगमार्ग में दीक्षित किया। योग मत उतना ही प्राचीन है, जितनी कि भारतवर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति। यह मत किसी भी आधुनिक युग के लिए भी आधुनिक परिस्थितियों के लिए उपयोगी तथा सदा नवीन है। चाहे कोई कर्म–मार्ग का अनुयायी हो अथवा भक्ति– मार्ग का या ज्ञान–मार्ग का, आत्मानुशासन का योग– मार्ग सबके लिए उपयोगी तथा अनुकूल है। यह चरित्र को दृढ़ बनाता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपने चुने हुए मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए उसकी मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित व शुद्ध कर देता है। समस्त आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, कुंडलिनी शक्ति एवं अन्य विशेष प्रक्रियाओं का कुशल एवं योग्य गुरु के समुचित पथ प्रदर्शन में ही अभ्यास करना चाहिए। योग– साधना सार्वभौम भौतिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक आत्मानुशासन का एक रूप है।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
एकस्य ध्यानयोगस्य तुलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।

हजारों अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ (के फल) एक ध्यानयोग मात्र के सोलहवें अंश के समान भी नहीं हैं।

विश्व योग दिवस पर महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी के श्री चरणों में हमारा शत शत नमन,! आदेश! आदेश!!

सारग्राही संत कबीर और उनका 'नैना-बैन अगोचरी' ब्रह्म

कबीर (सं. 1455-1575 वि.)

कबीर के राम पूर्णत: निर्गुण हैं जिसे उन्होंने सहज, अलख, निरंजन और निराकार कहा है। कभी उसे अपना 'पीव' कभी 'जननी' कहा है। इससे स्पष्ट है कि कबीर के राम निर्गुण-सगुण उभय रूप हैं। वह पिण्ड में भी हैं, ब्रह्माण्ड में भी हैं और साथ ही पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड से परे भी हैं। गुण में 'निरगुंण' और 'निरगुंण' में गुण देखकर कबीर हैरान हैं वस्तुत: गुण और निर्गुण पृथक् तत्त्व नहीं हैं। वे एक दूसरे में अंतर्निहित हैं।

डॉ. शकुंतला कालरा

एसोसियेट प्रोफेसर मैत्रेयीकॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

कबीर का ब्रह्म अनिर्वचनीय है। 'नैना बैन अगोचरी' कहकर उन्होंने इसी तथ्य को स्वीकार किया है, परंतु भक्ति से वह सगुण हो जाता है। सृष्टि के रूप में वह अपना विस्तार कर उसमें ही समाया हुआ है। सगुण भक्तों की भाँति ही उसे सृष्टिकर्त्ता मानते हुए उस पर कर्तृत्व-शक्ति एवं अन्य विविध गुणों का आरोप किया है। विभावात्मक शैली में उसके परस्पर विरोधी गुणों को रूपायित किया है। उनका ब्रह्म कुछ न होता हुआ भी सब कुछ है। बिना मुख के खाता है, बिना चरणों के चलता है और बिना जिह्वा गाता है।

कबीर का निर्गुण-निरंजन ब्रह्म शून्य या अनात्म कभी नहीं था वह भावात्मक सत्ता वाला है। वह परमदयालु, भक्तवत्सल, करुणामय है। भक्तों की 'पीर' अच्छी तरह समझता है। तीनों लोकों में उस जैसा पर-दु:खकातर कोई दूसरा नहीं है। 'निर्गुण' होते हुए भी वह अनंत गुणों का सागर है। सात समुद्रों को 'मसि' और समस्त वनों की लकड़ी को लेखनी तथा धरती को कागज़ बनाकर उस पर उसके गुणों को लिखा जाए तो भी लिखे नहीं जा सकते।

सगुण भक्तों की भाँति ही भगवान के विविध वैष्णवी नामों का प्रयोग भी कबीर ने किया है। राम, हरि, गोविन्द, मुकुन्द, मुरारि, विष्णु, मधुसूदन आदि सगुणवाची संबोधनों का अनेकश: प्रयोग किया है। इस प्रकार उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण-सगुण दोनों रूपों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। नाम-गुण की भाँति उसके रूप, धाम और लीला आदि अन्य सगुण तत्त्वों का भी कबीर ने यथास्थान वर्णन किया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि में कबीर के ब्रह्म में सगुण-निर्गुण दोनों संश्लिष्ट हैं। ''कबीर की रहस्यानुभूति निर्गुण होने के कारण असंभव है और इस अनुभूति का उन्हें जो अभिमान है, वह इस अनुभूति को और काल्पनिक अवास्तविक बनाता है, ऐसी बात बहुत से आलोचकों में उठी और सगुण-निर्गुण का दो टूक विभाजन हो गया। बहुत कम लोगों ने (पं. हज़ारीप्रसाद द्विवेद्वी और पं. परशुराम चतुर्वेदी को छोड़ दें समानधर्मिता तथाकथित सगुण और निर्गुण कवियों के बीच देखने की कोशिश की। दोनों नाम के रस के आस्वादक हैं, दोनों को निराकार की प्रतीति है। दोनों बस ईश्वर के प्रेम का प्रत्यक्ष निर्मल सहज करुणा और समस्त जगत् के साथ समभाव से मैत्री में करते हैं। सूर भी उस सरोवर की ओर चलने का आमंत्राण देते हैं जहाँ रात नहीं होती और कबीर का हंस भी उसी सरोवर की ओर उदग्र

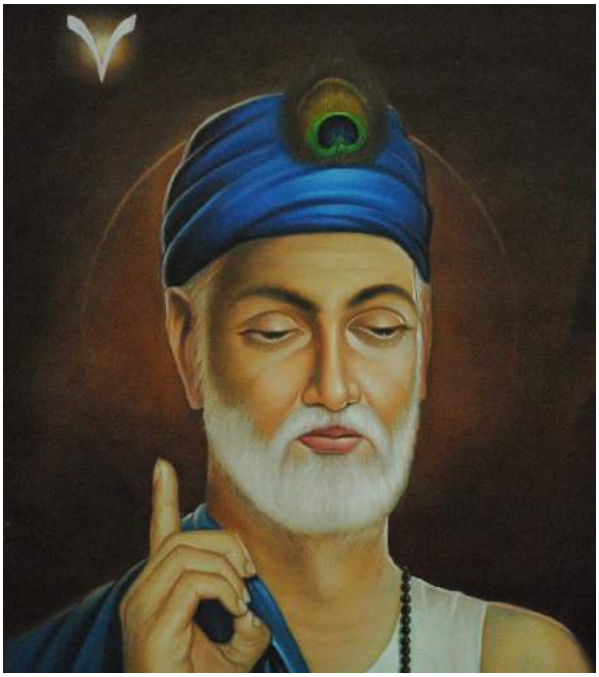

उत्कंठा से प्रस्थान करता है। ...कबीर, दादू, रज्जब, सुन्दर, जैसे संतकवि भी नाम के स्तर पर सगुण ही हैं। राम, गोविन्द, कृष्ण इनके भी संबोध्य हैं।....।''

कबीर ने जिस 'निर्गुण राम' के कथन का उपदेश दिया है। वह एक, अव्यक्त और इन्द्रियातीत है किंतु वह उस के लिए उसका त्रिगुणातीत होना आवश्यक नहीं मानते। उसे भावना से सगुण मानते हैं। वह इन्द्रियों से अगोचर है पर मन से इन गुणों के आरोप के कारण उसे एक व्यक्तित्व प्रदान कर गोचर बना दिया है। मन से गोचर होने पर ही वह उपासना और भक्ति का विषय बन सकता है। कबीर ज्ञानी होने के साथ-साथ भक्त भी थे। उनके निर्गुण राम निराकार और निस्सीम हैं, निर्विषय नहीं। अतः उसे निराकार सगुण कह सकते हैं। कबीर इस निराकार सगुण के अनन्य भक्त हैं। भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने राम पर अनेक सहृदयतापूर्वक श्रेष्ठ मानवीय गुणों का आरोप किया है। उनका कंत दिव्य गुणों का भंडार है। वह शोभा का ऐसा पुंज है जिसके एक अंग की शोभा का भी वर्णन नहीं किया जा सकता। भक्ति के अतिरेक के क्षणों में उन्होंने विष्णु के पौराणिक रूप का भी वर्णन किया है-निराकार साधना को मानते हुए भी एक साकार लीलामयरूप अवश्य इनवेफ कल्पना में रहा है।

अवतारवाद और प्रतिमा-पूजन का खंडन करते हुए भी कहीं-कहीं कबीर ने अवतारों की स्तुति तन्मयतापूर्वक की है। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के शब्दों में-''यह नहीं कहा जा सकता कि निर्गुणधारा के संत उन अवतारों के आकर्षण से अछूते रह सके, जो अपने भक्तों को संपर्क का सुख देने तथा पवित्रात्माओं पर अनुग्रह करने और पतितों, पापियों का विनाश करने के लिए अवतरित होते हैं। वास्तव में कबीर तथा निर्गुणधारा के अन्य संत अवतारों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

डॉ. मुंशीराम शर्मा के अनुसार, ''वैष्णव भक्ति को जिस पौराणिकता ने उपासना और ध्यान के क्षेत्र से निकालकर पूजा और अर्चा का रूप प्रदान किया था, जिसमें ईश्वर के अवतार, उनके नाम, रूप, गुण, लीला और धाम के चित्रण की प्रधानता थी, जो समय की आवश्यकता के अनुरूप सूक्ष्म को स्थूल द्वारा, निराकार को साकार द्वारा तथा अमूर्त को मूर्त द्वारा प्रकट करने में संलग्न थी, वह पौराणिकता भी कबीर की पदावली में खुलकर खेल रही है। उनके अनुसार पौराणिकता वैष्णवभक्ति के युग की विशेषता है। कबीर ईश्वर के अवतारों में विश्वास नहीं रखते। वे निर्गुण राम के भजन-स्मरण और जाप की बात करते हैं। मूर्तिपूजा में उनकी आस्था नहीं है। पौराणिकता वेफ प्रभाव का एक कारण वे कबीर का स्वामी रामानंद का शिष्य होना मानते हैं और दूसरा यह कि कबीर ने भगवद् भक्ति के प्रचार के लिए इस प्रभविष्णु पौराणिक शैली को अपनाया। कथाओं तथा वार्ताओं द्वारा जो बात लोकमानस पर सुगमता से बैठ जाती है, वह दर्शन की गूढ़-गुत्थियों द्वारा संभव न हो पाती।

कबीर ग्रंथावली में पुराणों के प्रसंग, कथाएँ और पात्रों का वर्णन होने के उपरांत भी कबीर को अवतारवाद का समर्थक नहीं कहा जा सकता। जिस अर्थ में गीताकार ने 'धर्मसंस्थापनार्थाय' माना है, वह कबीर को स्वीकार्य नहीं है। यहाँ उद्धारक की भूमिका में भी कबीर के निर्गुण राम हैं। क्योंकि कबीर के लिए सभी अवतार मरणधर्मा हैं। वह मानते हैं कि-**'जिन जिन देह धारी, त्रिभुवन में थिर न रहा कोई'** -उनकी दृष्टि में वे देह धारण कर शारीरिक कर्मों के भोक्ता ही होते हैं।

कबीर के गले से यह बात नहीं उतरती है कि- जो ब्रह्म अगम और अगोचर है, वह अपनी परम अवस्था को छोड़कर भूलोक पर लीलादि वे निमित्त अवतरित होता है:

ना दसरथ घरि औतरि आवा, ना लंका का राव संतावा।
देवै कुख न औतरि आवा। ना जसवै ले गोद खिलावा।।

पंचरात्र के मतानुसार एक अवतार 'अंतर्यामी' का है। राम का 'अंतर्यामी' नाम कबीर को प्रिय है।

का भयौ रचि स्वाँग बनायौ, अन्तरिजामी निकट न आयौ।।

इस प्रकार कबीर का राम संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट है। सगुण-भक्त जहाँ अपने आराध्य की अनिवर्चनीयता को मानता हुआ भी अपना समस्त ध्यान अवतार साकार रूप पर केन्द्रित रखता है, वहाँ कबीर की भक्ति का आलंबन सदैव अरूप है। भले ही कबीर यह कहते हैं-**''साईं केरे बहुत गुण''** किंतु यह गुण प्राप्त नहीं है। कबीरदास की भक्ति-साधना का प्रेम-बिंदु लीला मानते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है-''कबीर की प्रेम साधना निराली है क्योंकि सगुण साधकों ने सब कुछ मान लिया था, कबीर ने सब कुछ छोड़ दिया था।''

''बंदा चला लँगोटा झारि कै'' में कबीर का यही फक्कड़ भाव है जिसे पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बहुत दुहराया है।

अर्जुन विषाद योग

गीता जी द्वितीय अध्याय

डॉ. श्याम सुन्दर पाठक 'अनन्त'
लेखक, कवि, मोटीवेशनल स्पीकर,
असिस्टेंट कमिश्नर (वस्तु एवं सेवा कर)
उत्तर प्रदेश

गीता जी को समझना हो तो दो ध्रुवों को रुप में समझिए। एक ध्रुव पर पाण्डव हैं, अर्जुन है– जो उस साधक का प्रतिरुप है जो ईश्वरखोजी है, उसका साधन धर्म का मार्ग है और उसका युद्ध धर्मक्षेत्र में है , तो दूसरे ध्रुव पर कौरव है, जिसका प्रतिनिधि दुर्योधन है– जो संसारभोगी है, और उसका साधन सासांरिक कर्मो के माध्यम से सासांरिक वस्तुओं व भोगों को इकट्ठा करना व भोगना है । वह किसी भी कीमत पर उन सासांरिक वस्तुओं व भोगों को छोड़ने को तैयार नहीं है , चाहे उसको अधर्म का मार्ग ही क्यों ना अपनाना पड़े और अधर्म के कुरुक्षेत्र में अपने समस्त सगे– सम्बन्धिओं को क्यों ना आग में झोंकना पडे । ऐसा भी नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति जो सांसारिक कार्यो में लगा है वो गलत कार्य करने में नहीं हिचकिचाता , लेकिन संसार या सासांरिक वस्तुओं की प्राप्ति मनुष्य का लक्ष्य नहीं , क्योंकि एक– ना– एक दिन सभी को इस संसार और सांसारिक वस्तुओं का त्याग करके खाली हाथ ही जाना है । इस शेर में क्या खूब इसको बयां किया है–

सुल्तान यहाँ माशूक जो थे, सूने हैं पड़े मरघट उनके,
जहाँ चाहने वाले लाखों थे, वहाँ रोने वाला कोई नहीं ।।

और जब खाली हाथ ही जाना है तो किस बात की हाय–तौबा। दुनिया के बैंक– बैलेंस की बहुत चिन्ता रहती है, दिन भर उसे भरने और बढ़ाने की जुगत में व्यक्ति लगा रहता है, जबकि उसमें से एक फूटी कौड़ी भी व्यक्ति अपने साथ नहीं ले जा सकता तो फिर उस नाम रूपी धन की चिन्ता क्यों नहीं है, जो आत्मा के साथ लिपट कर जाता है और उसे भवसागर से पार लगा देता है। केवल कुरुक्षेत्र में ही युद्ध करते नहीं रह जाना है, बल्कि धर्मक्षेत्र में उतरकर ईश्वरखोजी बनकर कृष्णरूपी पूर्ण सद्गुरु द्वारा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर उसे प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

गीता जी की इस व्याख्या में एक ईश्वरखोजी साधक को किन– किन परेशानियों का सामना करना पड़ता है (आन्तरिक युद्ध), उसका एकदम सटीक समाधान सुझाया है ।

इससे पहले कि गीता जी के प्रत्येक श्लोक का गहन व गूढ़ अर्थ व मर्म समझें, आईये पहले संक्षेप में जान लेते हैं कि एक ईश्वरखोजी (अर्जुन) और एक संसारभोगी (दुर्योधन) में क्या अन्तर है, इस से आपको आगे के श्लोकों को अच्छे से समझने में मदद मिलेगी।

ईश्वरखोजी जिज्ञासु होता है और उस सर्वनियंता को जानने का प्रयास करता है, जिसने इस संसार का निर्माण किया। कोई तो शक्ति है जो इस संसार को, प्रकृति को इतने सुचारु रूप से चला रही है। आखिर वो शक्ति कौन सी है। क्या वही ईश्वर है। क्या सच में ईश्वर है। और यदि कोई ईश्वर है भी तो क्या वो सच में दिखाई भी देता है। इस तरह के ढेरों सवाल उसके जेहन में तूफान मचाए रहते हैं। और फिर वो इन सवालों के जवाब जानने का प्रयास करता है। कई बार कामयाब हो जाता है तो कई बार असफलता भी हाथ लगती है। एक सच्चे ईश्वरखोजी के लिए ही गीता जी एक सच्चे मार्गदर्शक का कार्य करती है। ये सिर्फ भगवान कृष्ण का अर्जुन को कोई उपदेश नहीं है, बल्कि स्वयं परमात्मा को हर ईश्वरखोजी को, साधक को ब्रह्मज्ञान का उपदेश और उस पथ पर आने वाले कंटकों व अन्य बाधाओं का भी स्पष्ट मार्गदर्शन है। हर ईश्वरखोजी एक अर्जुन है, और यदि वो सच्चा ईश्वरखोजी है जो उसके जीवन में किसी न किसी कृष्णरुपी सद्गुरु का पदार्पण निश्चित है। अब ये पूर्ण सद्गुरु की पहचान कैसे होती है, यह भी गीता जी स्पष्ट बताती हैं । होता ये है कि हर ईश्वरखोजी चलता तो है ईश्वर की खोज में, लेकिन अक्सर चोले के वेश में बैठे रावण उस ईश्वरखोजी रुपी सीता की बुद्धि का अपनी मीठी–मीठी बातों से अपहरण कर लेते हैं। एक सच्चे गुरु की पहचान ही तो सबसे कठिन है। लेकिन गीता जी ना केवल एक सच्चे साधक को, सच्चे ईश्वरखोजी को उस दिव्यज्ञान, परमज्ञान, ब्रह्मज्ञान के बारे में बताती है, उसके साथ– साथ एक सच्चे व पूर्ण गुरु की पहचान करना भी सिखाती है। इसलिए एक सच्चे ईश्वरखोजी को हर समय गीता जी को अपने साथ रखना चाहिए व उसके वचनों पर विवेकपूर्ण बुद्धि से पूर्ण आस्था रखते हुए उसका पालन करना चाहिए।

एक ईश्वरखोजी के लिए विवेकशील बुद्धि ही उसका साथी है। ये बात सत्य है कि अध्यात्म बुद्धि से अधिक आस्था व श्रद्धा का क्षेत्र है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण आगे खुद कहेंगे कि श्रृकृावाल्लभते ज्ञानं– अर्थात् श्रद्धावान को ही ज्ञान प्राप्त होता है और श्रद्धा व बुद्धि में थोड़ा सा बैर है। बुद्धि तर्क करती है जबकि श्रद्धा तर्क– वितर्क से दूर आस्था पर आधारित है। अब प्रश्न उठता है कि भक्ति आस्था या श्रद्धा का विषय है और एक ईश्वरखोजी को अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए, तो दोनों में विरोधाभास नहीं दिखता। एक तरफ तो हम कह रहे हैं कि भक्ति व ज्ञान श्रद्धा से मिलेगा और दूसरी तरफ हम कह रहे हैं कि एक भक्त को, एक ईश्वरखोजी को अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। तो सबसे पहले तो ये ध्यान रखिए कि यहां सिर्फ बुद्धि नहीं विवेकशील बुद्धि शब्द है। अब आप सोच रहे होंगे कि बुद्धि व विवेकशील बुद्धि में क्या अन्तर है। बुद्धि तर्क – वितर्क का सहारा लेती है और उसमें श्रद्धा का कोई स्थान नहीं। जबकि विवेकशील बुद्धि जब अपने तर्कों का सही जवाब पा लेती है, तो श्रद्धानवत होकर बात स्वीकार कर लेती है। वह तर्क पर तर्क नहीं करती चली जाती, जैसे अर्जुन। जब अर्जुन को उसके समस्त प्रश्नों का सटीक और वैज्ञानिक समाधान मिल जाता है तो वह भगवान श्रीकृष्ण की बातों को श्रद्धानवत होकर स्वीकार कर युद्ध के उद्धत हो जाता है ।

विवेकशील बुद्धि कैसी होती है – इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है , स्वामी विवेकानन्द। उनके बचपन का नाम नरेन्द्र था। नरेन्द्र बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि के थे और एक सच्चे ईश्वरखोजी थे। इसलिए अपने प्रश्नों – क्या ईश्वर है, क्या ईश्वर का कोई प्रमाण है, क्या ईश्वर दिखाई दे सकता है और क्या गुरु जिसे साक्षात् परमब्रह्म तक कहा जाता है, उस ईश्वर का दर्शन करा सकता है।

हम सबके दिमाग में भी तो शायद यही सब सवाल उठते हैं। लेकिन अधिकतर ईश्वरखोजी विवेक बुद्धि का प्रयोग न करके केवल श्रद्धा व आस्था के सहारे ईश्वर को खोजने चल पड़ते हैं। इसलिए अधिकतर ईश्वरखोजी चमत्कार करने वाले, सांसारिक मनोकामना पूरी करने वाले, मन्त्र– माला पकड़ाने वाले अवास्तविक गुरुओं के चंगुल में फंस जाते हैं। ऐसे में विवेकानन्द की तरह विवे. कबुद्धि का प्रयोग करने की आवश्यकता है।

नरेन्द्र अनेकों गुरुओं के पास गए। सभी से उन्होंने एक ही प्रश्न किए– क्या ईश्वर है, क्या आपने ईश्वर को देखा है और क्या आप मुझे उस ईश्वर का दर्शन करा सकते हैं। बहुतों ने तो मना कर दिया। कुछ ने माला पकड़ा दी तो नरेन्द्र ने तर्क दिया कि मेरे पास तो माला जपने वाले हाथ हैं, लेकिन जिसके पास हाथ ही नहीं हैं तो वो कैसे माला जपेगा। किसी ने कहा कि ये मन्त्र लो और खूब मन लगाकर जपो। तो वे कहते कि मैं तो मन्त्र जप लूँगा, लेकिन जो गूँगा– बहरा है, वह कैसे नाम जप पायेगा, फिर तो ईश्वर उसे नहीं मिल पायेगा , और यह कैसा ईश्वर है जो गूँगे– बहरे को नहीं मिल सकता, जबकि उस ईश्वर को अगोचर कहा जाता है। अगोचर का अर्थ है– अ माने नहीं, गो माने इन्द्री और चर माने प्राप्त होने वाले अतः अगोचर का अर्थ हुआ वह ईश्वर जो

किसी इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला नहीं है। और जब वह इन्द्रियों से प्राप्त नहीं हो सकता तो कोई मन्त्र– माला द्वारा कैसे ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है। कबीर भी कहते हैं–

माला फेरत जुग भया, फिरा ना मन का फेर ।
करका मनका ड़ार दे, मन का मनका फेर ।।

अर्थात् माला फेरते तो दुनिया को बहुत समय हो गया, लेकिन मन ना फिरा अर्थात् बदला , इसलिए हे मानव, तू हाथों का माला फेंक और तेरी श्वासों में जो ईश्वर का नाम चल रहा है, उसे फेर अर्थात् सुन ।

अर्जुन को भी भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया तो अर्जुन को कुछ नहीं दिखा । तो भगवान ने कहा कि मैं इन चर्म–चक्षुओं से दिखाई नहीं देता तो अर्जुन ने पूछा कि फिर आप कैसे दिखाई दोगे, तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि– दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमेश्वरं ।

अर्थात् मैं तुझे वो दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ, जिसके माध्यम से तू योगेश्वर रुप को देख पायेगा।

अर्थ सीधा सा है, जो आपको उस दिव्य प्रकाश रुप परमात्मा के दर्शन करा दे, वही सच्चा गुरु है। नरेन्द्र इस बात को अपनी विवेकशील बुद्धि से समझ चुके थे, इसलिए किसी ढोंगी गुरु के चक्कर में नहीं फंसे। आखिर में उनकी खोज पूरी हुई, जब उनके जीवन में एक सच्चे गुरु रामकृष्ण परमहंस का पदार्पण हुआ। नरेन्द्र ने रामकृष्ण परमहंस जी से भी वही प्रश्न किए, तो उन्होंने स्पष्ट रुप से उद्घोषणा की कि हाँ, ईश्वर है और उसे देखा जा सकता है। नरेन्द्र के आग्रह पर उन्होंने नरेन्द्र के दिव्य चक्षु को खोलकर उस प्रकाश रुपी परमात्मा का दिव्य दर्शन करा दिया। तब नरेन्द्र ने अपनी समस्त श्रद्धा व आस्था अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के चरणों में समर्पित कर दी और गुरु ने उन्हें नरेन्द्र से विवेकानन्द न बना दिया। एक सच्चे ईश्वरखोजी को सच्चा गुरु मिलता अवश्य है, बस उसे कैसे पहचानना है, वो हमें गीता जी बताती हैं।

बात समझ आ गई होगी। विवेकशील बुद्धि का प्रयोग इसलिए करना है कि कहीं हमारी आस्था या श्रद्धा ठग ना ली जाए, और सच्चे गुरु की पहचान में उस विवेकशील बुद्धि का प्रयोग करना है लेकिन एक बार जब जीवन में ऐसा सच्चा गुरु आ जाए, उसके बाद अपनी समस्त श्रद्धा के साथ उस मार्ग पर पूरी दृढ़ता से चलना है।

समकालीन दोहे

प्रो. डॉ. शरद नारायण खरे
प्राचार्य
शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय
मंडला (म.प्र.)

कैसा कलियुग आ गया, बदल गया इंसान।
दौलत के पीछे लगा, तजकर सब सम्मान।।

बदल गया इंसान अब, भूल गया ईमान
पाकर दौलत बन गया, मानो खुद भगवान।।

नैतिकता को तज करे, पोषित वो अँधियार।
इंसां अब इंसान ना, बना हुआ अखबार।।

प्यार,वफा और सत्य अब, ना इंसां के पास।
भावों का खोया हुआ, देखो अब अहसास।।

रिश्ते सारे टूटते, स्वारथ का बाजार।
बदला है इंसान का, आज सकल आचार।।

इंसां खो संवेदना, बना हुआ पाषाण।
चला रहा अविवेक के, वह अब नित ही बाण।।

इंसां ने अब खो दिया, अपनेपन का भाव।
भाईचारा है नहीं, भौतिकता का ताव।।

नारी–नर अब छोड़कर, सारा चाल–चरित्र।
बने हुए हैं आजकल, मानो हों चलचित्र।।

नारी वस्त्र उतारकर, बनी हुई गतिशील।
कब का खोया नार ने, भीतर का सब शील।।

बदल गया इंसान अब, बना हुआ है यंत्र।
इसीलिए तो जिन्दगी, मानो हो संयंत्र।।

बदल गया इंसान अब, उसका कपटी रूप।
इसीलिए तीखी लगे, मक्कारी की धूप।।

सब उदारता हो गया, मानव अब अनुदार।
दयाभाव अब शोष ना, हिंसा का व्यवहार।।

खूनी है अब आचरण, सत्य गया है रूठ।
मानव को अब भा रहा, केवल–केवल झूठ।।

कौन थी वह बालिका ?

सत्य घटना पर आधारित

डॉ. ममता बनर्जी 'मंजरी'
गिरिडीह 'झारखण्ड'

बात उन दिनों की है जब पुरुलिया शहर में हमारा नया मकान बन रहा था।कई महीनों के लिए मेरी माँ और भाई शहर में ही किराये पर एक मकान ले रखा था।

एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार का मकान था वह। मकान के एक ओर भव्य काली मंदिर था। सुबह–शाम मंत्रोच्चारण और आरती की आवाज से घर गुंजायमान रहता था। माँ जिस मकान में रहा करती थी वह लगभग मंदिर से बहुत करीब था।मकान मालिक का पूरा परिवार माँ और भाई के हर सुख–सुविधा का ख्याल रखते थे।

तीन महीने में हमारा नया मकान बनकर तैयार हो गया लेकिन यह उन लोगों का अपनापन ही कहिए या अन्य कोई संयोग कि इच्छा रहने के बावजूद माँ और भाई लगभग आठ महीने उस किराये के मकान में रहने के लिए निर्णय लेना पड़ा।हेतु बनी भाई की स्नातकोत्तर परीक्षा।

भाई राँची विश्वविद्यालय का छात्र था और परीक्षा के लिए उसे लगभग एक महीना राँची में रहना जरूरी था। ऐसे में माँ को नये घर में अकेले रखना सुरक्षित नहीं था।

किराये वाली मकान में माँ सुरक्षित थी।

इस मकान में गर्मी का मौसम भी माँ के लिए सुहावन था क्योंकि माँ को छत में खुले आकाश के नीचे सोने का मौका जो मिला था। कभी–कभी छत पर अलग–अलग दिशाओं में मच्छरदानी लगाकर बाकी महिलाएँ भी सोया करती थी।

हाँलाकि पुरुलिया में बिजली नहीं के बराबर कटती थी लेकिन खुले आकाश के नीचे अच्छी नींद आने से माँ भी प्रसन्नचित रहा करती थी। इसलिए मेरा भाई छत पर एक टेबुल फैन का कनेक्शन कर दिया था।

खैर..निश्चित दिन पर भाई राँची के लिए रवाना हो गया।

कई दिन यूँ ही गुजर गए।माँ को किसी बात की तकलीफ नहीं थी।सभी उनका खास ध्यान रखते। दिन के अवसान के बाद माँ रात्रिभोजन से निपटकर आराम से छत पर नींद फरमाती।

एक रात की बात है।माँ यथारीति रात को छत पर बिस्तर बनाकर मच्छरदानी लगाई और टेबुल पंखा चलाकर गहरी नींद में सो गई।

आधी रात को अचानक छम–छम पायल की आवाज से माँ की नींद टूटी। माँ हड़बड़ाकर उठ बैठी और इधर–उधर नजर दौड़ायी।

हालाँकि लिखते वक्त मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं फिर भी आगे की घटना कलमबद्ध करने के क्रम में बता दूँ कि माँ ने देखा कि छत को घेरने वाली 4 फिट की दीवार पर बैठी एक दिव्य रूप धारिणी छोटी सी बालिका अपने महावर लगी चरण–युगल हिलाती हुई माँ की ही ओर देखकर मुस्कुरा रही है।

दृश्य देखकर माँ ने आव देखा न ताव,सीधे मच्छरदानी के रस्सी को तोड़ती हुई दनदना कर सीढ़ी से नीचे उतरी और अपने कमरे में प्रवेश करते ही धम्म से बिस्तर पर जा गिरी।

माँ कब गहरी नींद में आच्छन्न हो गई पता नहीं।

सुबह जब कामवाली आई तो उसे दरवाजा खुला मिला। वह अंदर आई तो देखी कि माँ गहरी नींद में सो रही है। उसने माँ को जगाया और दरवाजा खुला रहने की बात पूछी।

माँ को अचानक बीते रात की घटना याद आ गई। वह कामवाली को बगैर कुछ बताए सीधे सीढियां चढ़कर छत पर आई। टेबुल पंखा अबतक चले जा रहा था।मच्छरदानी की एक ओर की रस्सी भी टूटकर लटक रही थी।माँ ने चारों ओर नजर दौड़ाया,कहीं कोई नजर नहीं आया।

दो पल ठहरकर वह सबसे पहले पंखा बन्द की और धीरे-धीरे मच्छरदानी के तीनों और की रस्सी खोली कि अचानक बिस्तर पर छोटी सी लाल पोला (बंगालियों में सुहाग का प्रतीक एक तरह की लाल चूड़ी) पड़ी मिली।

माँ ने झट से उसे हाथ में उठाया और उसे उलट-पलट कर देखा। सोचने लगी कि इतनी छोटी वृत वाली लाल पोला आज के जमाने में देखने को नहीं मिलती क्योंकि आजकल बाल-विवाह भी नहीं होता। फिर कौन थी वह बालिका? साक्षात देवी?

माँ के दोनों आँखों से अविरल अश्रुधार बहने लगे और वह इस बात का पश्चाताप करने लगी कि कल रात को उस नन्हीं बालिका के महावर लगे चरण युगल क्यों नहीं पकड़ी? क्यों नहीं साष्टांग दण्डवत की बालिका को?

लेकिन अब समय गुजर चुका था।

माँ लाल-पोला अपने सीने से लगाए धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतरकर कमरे में आई और बड़े यत्न से लाल-पोले को अलमारी में रख दिया।

कई दिनों के बाद भाई राँची से वापस लौटा तो माँ उसे सारी घटना बताई और वह लाल-पोला भी दिखलाई।

भाई अवाक रह गया।

गर्मी की छुट्टी में जब हम बहनें एक-एक कर माँ के पास पहुँचे तो सारी बातों से अवगत होने का मौका हमें मिला और उस लाल-पोला का दर्शन करने का सौभाग्य भी।

वह अद्‌भुत घटना आज तक एक प्रश्न-चिन्ह बनकर सबके सामने खड़ा है- 'कौन थी वह बालिका ?'

माँ के बिस्तर पर पड़ी मिली छोटी सी लाल-पोला साक्षी बनकर आज भी माँ के पास बड़े यत्न से रखी हुई है।

राष्ट्रमाता गौ माता

डॉ. निशा नंदिनी भारतीय
तिनसुकिया, असम

सृष्टि रचना की ब्रह्मा ने
आई धरती पर प्रथम गौ-माता।
माँ-माँ का प्यारा शब्द
गौ-माता की बोली से आता।

मां समान दुग्ध पान कराती
पाल-पोस कर बड़ा बनाती।
कामधेनु के रूप में
इच्छाओं को पूरा करती।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश विराजे
गौ-माता के सींगों तले।
नासिका विराजे कार्तिकेय
माँ- गौरी ललाट तले।

खुर्र विराजे नाग-देवता
हनुमान विराजे पूँछ में।
गोबर में विराजे लक्ष्मी
सूर्य-चंद्र विराजे आंखों में।
बैठे जहां गौ-माता
सकारात्मकता भर जाती।
होता वातावरण शुद्ध
शांति मिल जाती।

जीव वैतरणी पार करता
मृत्यु से पहले गौ-दान करता।
जन्म से गौ-पुत्र कहलाता
गोत्र शब्द गौ-माता से आता।

गौ-माता के चरणों से
गोधूलि बेला आती।
विवाह आदि का शुभ मुहूर्त
यह बेला दे जाती।

पंचगव्य गौ-माता के
रोगों को दूर भगाते।
सेवा करने गौ-माता की
देव धरती पर आते।

घर में रहती गौ-माता
वास्तु दोष मिट जाता।
सेवा की कृष्ण ने जिसकी
वह है जग की माता।

अद्भुत संन्यासी-भगवान परशुराम की कहानी

पुस्तक समीक्षा

सुश्री इंदु सिंह 'इंदुश्री'
स्वतंत्र लेखन
नरसिंहपुर, मध्य प्रदेश

संन्यासी श्रृंखला के रचनाकार राजीव शर्मा ने विद्रोही संन्यासी के पश्चात भगवान परशुराम को आधार बनाकर अपने उपन्यास अद्भुत संन्यासी का सृजन किया जो केवल इस सीरीज की अगली कड़ी मात्र नहीं बल्कि, अपने सनातन अवतारों को वर्तमान काल में पुनर्स्थापित करने जैसा अनूठा महायज्ञ है। जिसके जरिये नौनिहाल भी अपने वास्तविक आदर्शो से परिचित होने के अलावा अपने भूले–बिसरे इतिहास, अपनी सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक ग्रंथों के बारे में भी जान सकते जिनमें ऐसी–ऐसी कथाएं व नायक उपस्थित जिनको अपने जीवन में उतारकर आज की दिग्भ्रमित व भटकी हुई युवा पीढ़ी अपने भावी जीवन की दिशा व दशा तय कर सकती जो मोबाइल के जमाने में बुरी तरह से भटक चुकी है । विद्रोही संन्यासी में जहां हम लेखक की कलम से आदि शंकराचार्य के जीवन चरित पर उत्कृष्ट लेखन देख चुके वहीं अद्भुत संन्यासी में भगवान परशुराम जैसे कालजयी विराट व्यक्तित्व को एक छोटे से उपन्यास में समेटना जिनका कालखंड सतयुग से कलयुग तक विस्तृत और अनेक कहानियां उनके नाम से जुड़ी हुई जो उनके व्यक्तित्व के भिन्न पहलुओं को उजागर करती पर, लेखक ने उनसे जुड़े सभी प्रसंगों को इसमें सहेजने का भगीरथी प्रयास किया जिसमें वे काफी हद तक सफल रहे हैं । उपन्यास की शुरुआत में ही उन्होंने उनके बारे में कौन है वह काव्य के जरिए बेहतरीन सार प्रस्तुत किया जो भगवान परशुराम के भव्य चरित्र की एक छोटी झांकी प्रस्तुत करती और पाठकों की उत्सुकता भी इस उपन्यास के प्रति बढ़ा देती हैं । एक लेखक का लिखना तभी सार्थक होता जब वह समाजोपयोगी व संदेशप्रद लिखता तो इस दृष्टिकोण से उनके दोनों उपन्यास सटीक जो आज के समय की परम आवश्यकता तो इस तरह वे ईश्वरीय कृपा से समयानुकूल लेखन कर पा रहे जो आगे चलकर भी प्रासंगिक रहेगा और यह लेखक की दूरदर्शिता का भी परिचायक जो इस तरह के पारसमणि अवतारों को अपनी कलम का केंद्र बनायकर अपने लेखन को भी अमर कर लेते हैं । भगवान विष्णु के दशावतारों में छठे अवतार भगवान परशुराम एक अद्वितीय विभूति जो मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और वामन के बाद परन्तु, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि से पहले आये और दोनों के मध्य कड़ी की तरह जुड़कर उनको एकसूत्र में बांध दिया और परिपूर्ण देह में प्रथम अवतार कहलाने का सौभाग्य भी उनको प्राप्त हुआ जो केवल अवतारों ही नहीं कालों त्रेता व द्वापर को भी आपस में जोड़ते हैं । हम सबके लिए भी यह बहुत ज्यादा हर्ष की बात कि वे कलिकाल में भी विद्यमान जो कल्कि अवतार को मार्गदर्शन देकर कार्यमुक्त हो पायेंगे और सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलयुग तक विस्तार पाने वाला अनुपम चरित्र जिसने अपने दीर्घ जीवन में अनगि. नत ऐतिहासिक महापुरुषों व अवतारों को देखा और ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर क्षत्रियोचित व्यवहार कर शास्त्र व शस्त्र को एक साथ साधने की कला भी अनेकों योद्धाओं को सिखाई जिसकी आज फिर आवश्यकता है ।

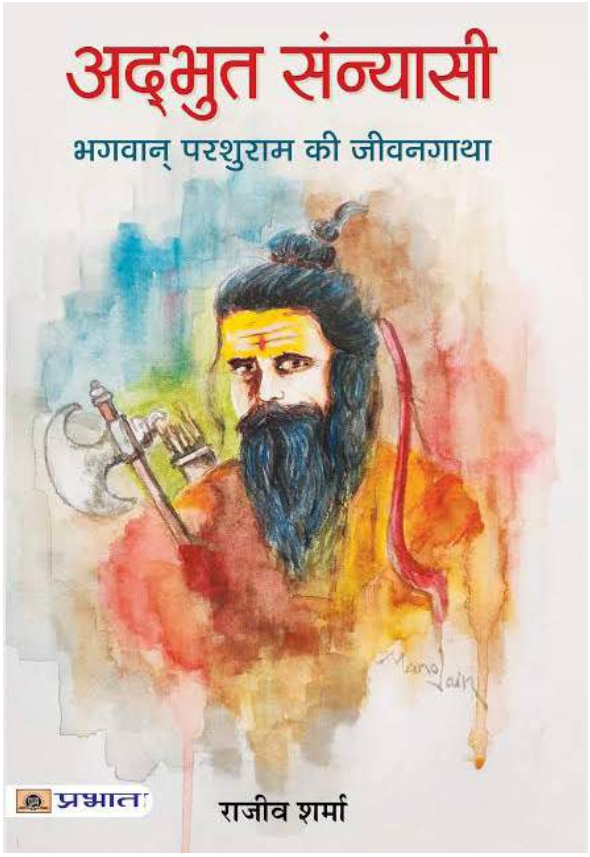

भगवान परशुराम को आज भी बहुत से लोग पूरी तरह नहीं जानते उनमें भी अधिकांश ने तो कोई धर्मग्रन्थ या पुराण आदि नहीं पढ़े तो वे सुनी-सुनाई बातों या पूर्वाग्रह के आधार पर उनके बारे में धारणा निश्चित कर लेते व उन सुनी-सुनाई बातों को ही दोहराते जबकि, धर्म का मर्म समझना अत्यंत कठिन कि उसके लिए सूक्ष्म बुद्धि व दृष्टि जरूरी पर, स्थूल सोच व उथली विवेचना वाले इसे नहीं समझ पाते तो किसी एक घटना या कथा अंश पर ही अपनी प्रतिक्रिया देकर सम्पूर्ण चरित की समीक्षा करने लग जाते जो असम्भव पर स्वयं को बुद्धिजीवी व सर्वश्रेष्ठ समझना ऐसा भ्रम जिसका कोई इलाज नहीं है। भगवान परशुराम को एक या दो घटनाओं की नजर से देखना उनके हिमालय जैसे महाविशाल व्यक्तित्व को कम कर के आंकना तो जिन्हें उनके बारे में सम्पूर्ण व सही जानकारी नहीं उन्हें विशेष तौर पर यह पुस्तक खरीदकर पढ़ना चाहिए जिससे उनके दिमाग के जाले साफ हो सके तथा वे नए नजरिये से उनके बारे में कोई नई सकारात्मक विचारधारा बना सके जिससे उनके भीतर की नकारात्मकता भी समाप्त हो तब जाकर हम अपने इन सनातनी के ऋण से मुक्त हो सकेंगे जो सबको अवश्य करना चाहिए या फिर झूठी बातों का प्रचारक बनकर गलत तथ्यों को प्रसारित नहीं करना चाहिए यह भी कोई कम सहयोग नहीं है। भगवान परशुराम ने अपने पराक्रम से केवल नया इतिहास ही नहीं बल्कि, एक नूतन परशुराम प्रदेश भी रच दिया जिसके लिए सम्पूर्ण पृथ्वी उनके प्रति नतमस्तक है कि उन्होंने यदि कुछ नष्ट भी किया तो नया रचा भी है इस तरह वह संतुलन बनाकर सृष्टि की सरंचना में एक सुंदर हस्तक्षेप किया जो उनकी गाथा सुनाता है । इस उपन्यास को पढ़ने से ब्राह्मणत्व व क्षत्रियत्व का श्रेष्ठतम उनमें प्रतिबिंबित होता दिखाई देता जिसने आने वाले बहुत से युगनायकों को प्रभावित किया एवं आदिशंकराचार्य व स्वामी विवेकानंद में भी उन्हीं की अनुगूंज सुनाई देती केवल, अंर्तदृष्टि से देखने की जरूरत है ।

प्रस्तुत उपन्यास उनके कुल का महिमामंडन भी शत्रोक्त तरीके से करती व उनके पूर्वजों की सटीक जानकारी भी इसमें उपलब्ध और परशुराम के जन्म से पूर्व उनके पिता व माता के स्वयंवर का भी चित्रण इसमें हुआ जो दर्शाता कि जब ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों के गुण मिलते तो परशुराम का जन्म होता जो अपने पिता की तरह यदि समस्त धर्मग्रंथों के ज्ञाता तो युद्ध कौशल भी उनके भीतर स्वाभाविक रूप से भरा हुआ जिसकी वजह से वह राम से परशुराम बन जाते हैं । लेखन शैली इतनी रोचक व पठनीय कि यदि आपने यह किताब अपने हाथों में उठा ली तो एक बैठक में पूरी पढ़कर ही उठेंगे कि आगे क्या हुआ या होने वाला यह जिज्ञासा आपको अंत तक लेकर जाएगी और धीरे-धीरे हर पृष्ठ के साथ आप लेखक के ज्ञान से भी प्रभावित होंगे कि किस तरह से उन्होंने अनेक धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन व उनमें वर्णित उन स्थलों के भ्रमण से जानकारी एकत्रित कर उसे इस पुस्तक में सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया जिससे कि शब्दों ने चित्रों का रूप लेकर कथा को साकार कर दिया जैसे-जैसे हम पढ़ते जाते दृश्य सामने उपस्थित होते जाते जो लेखन को चलचित्र की भांति सजीव बना देते है। उनके पिता जमदग्नि ऋषि व उनकी माता रेणुका देवी के विषय में भी जिस तरह से वर्णन किया गया वह उन दोनों के मध्य के सम्बन्धों को दर्शाता जो इस तरह से आपस में जुड़े हुए कि दो पहियों की तरह जीवन गाड़ी को आगे बढाते जिसमें एक छोटी-सी गलती से शंका उत्पन्न हो जाती व क्रोधवश वह दर्दनाक कथानक सामने आ जाता जिसकी वजह से रेणुका के राम पर मातृहन्ता होने का कलंक लग जाता जिसे वे अपनी चतुराई से मां को संजीवन विद्या द्वारा पिता से ही पुनर्जीवन दिलवाकर सुधार लेते तो दूसरी तरह पिता भी इस मर्मान्तक घटना के बाद अपने अग्निमय क्रोधी स्वभाव को पूरी तरह बदलकर इतने करुणामय व सहिष्णु जाते कि यही कालांतर में उनके हत्या की वजह बन जाता है । कहीं-कहीं पुस्तक में किन्हीं घटनाक्रम को कम जगह में ही समेट दिया गया जो थोड़ा-सा अखरता लेकिन, जिन्हें पूर्व में इनका ज्ञान वे इन सभी किस्सों को जोड़ लेते भगवान राम, कृष्ण से उनके मिलने वाले प्रसंग हो या अम्बा की सहायता करना या कर्ण के विद्या अध्ययन करने वाला सभी को केवल परशुराम से सम्बन्धित होने के कारण किताब में लिया गया पर, उनको अधिक विस्तार नहीं दिया गया जिनके प्रति पाठक की उत्सुकता ज्यादा रहती कि वह इन सबके बारे में पहले से जानता तो शायद यही वजह कि इन पर कम कलम चलाई गई पर, परशुराम से जुड़े सभी किस्सों व कहानियों को इसमें रखा गया जो इस किताब को संग्रहणीय बनाती है ।

पर्यावरणीय दोहे

डॉ. विद्यासागर मिश्र 'सागर'
प्रधानाचार्य (से. नि.)
लखनऊ

गंगा मैली हो नहीं इसका ले संकल्प।
पूरी दुनियाँ में कहीं इसका नहीं विकल्प।।

मानव जीवन है मिला, करें कार्य सब नेक।
अपने जन्मदिवस पर पौधा रोपें एक।।

वृक्षों को मत काटिये,होती इनमें जान।
महिमा इनकी जानतेष्सागरष्पथिक किसान।।

प्रकृति विरोधी कर्म को, करते हैं कुछ लोग
इसीलिये हैं बढ़ रहे भांति भांति के रोग।।

नदियाँ अपने देश की हरती सबका पाप।
देख दुर्दशा स्वयं की, करती यहाँ विलाप।।

कूड़ा, कचरा, गंदगी मत सरिता में डाल।
अपनी हालत देखकर, नदी हुई बेहाल।।

पीपल, बरगद, आंवला, तुलसी, नीम व आम।
प्राणवायु देते हमे, प्रतिदिन सुबहो शाम।।

मानव ने खुद ही किया, वृक्षों से खिलवाड़।
नित्य वृक्ष को काटकर, जंगल दिए उजाड़।।

यदि अपने हम शहर को, नहीं करेंगे साफ।
आने वाली पीढ़ियां, नहीं करेंगी माफ।।

वृक्ष हमारे देवता, जीवन का आधार।
अंत समय भी कर रहे, मानव का उद्धार।।

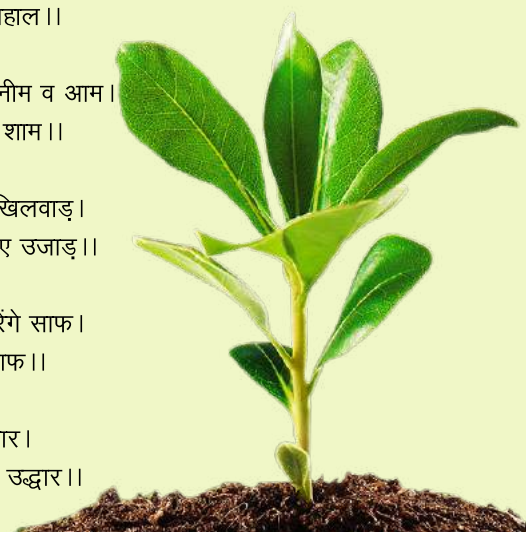

मंजिरी 'निधि'
बड़ौदा, गुजरात

नवल करो पर्यावरण, सुंदर सा परिवेश।
रंग बिरंगे फूल से , सज जाता यह देश।।

शुद्ध रहे पर्यावरण, हरियाली चहूँ ओर।
वन दोहन यदि ना करें, ये मानव घनघोर।।

स्वच्छ रहे पर्यावरण, सुंदर हो परिवेश।
आदत अच्छी हो अगर, बदलेगा यह देश।।

पावन सा पर्यावरण,मं में भरे उमंग।
पक्षी पेड़ों पर सदा, रंगी उनके रंग।।

सारे सपने गुम हुए, मिटे देश के गाँव।
नहीं रहे वो नीम भी, कहाँ मिले फिर छाँव।।

नदियाँ सारी कर रहीं, सबसे एक सवाल।
कहाँ गया पर्यावरण, हाल हुआ बेहाल।।

गौरैया कहती फिरे, कहाँ गए आधार।
सारे पादप कट रहे, नहीं मिले अब डार।।

तान कुल्हाड़ी है खड़ा, देखो मानव चोर।
काट काट कर बेंचता, नहीं मचाता शोर।।

सरि पर बाँधे बाँध तो,कानन दिये उजाड़।
धरती को खोदा दिया, खोदें सभी पहाड़।।

आओ हम सब मिल करें, प्रणवों बारम्बार।
स्वच्छ रखें पर्यावरण, है मेरी दरकार।।

खज़ाना

किशोरों के लिए कहानी

"बाबा किसी गहरी सोच में डूब गए । दोनों ने समझा वह ध्यान लगा रहे हैं । वह उनकी समाधि के टूटने का इंतजार करने लगे। उन्हें वहां बैठे-बैठे आध घंटा हो गया। उनका मन का शैतान सक्रिय होने लगा । 'ऐसे ही यहां फंस गए, साधु बाबा उपदेश के सिवा क्या दे सकते हैं?, इससे तो अच्छा था गांव में घूमते-घामते निकल जाते। कहीं हाथ मारने की कोशिश करते। और कुछ नहीं तो आटा दाल की दुकान का तोंदूराम दुपहरी में बैठा बैठा झपकी लेता तो उसकी पैसे वाली संदूकची ही उड़ा कर भाग लेते। कुछ दिन का अच्छा जुगाड़ हो जाता या फिर बर्फ के बताशे वाले की पोटली पर हाथ साफ कर देते। यहां कहां फंस गये?'"

डॉ. सन्तोष खन्ना
वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रधान संपादक : महिला विधि भारती त्रैमासिक पत्रिका
दिल्ली–110088

एक गांव था। वहां अधिकांश लोग गरीबी की दलदल में फंसे जीवन जी रहे थे । गांव में कोई स्कूल भी नहीं था। दूर के स्कूल में कम बच्चे ही पढ़ने जाते थे। बच्चे विशेष रूप से लड़के हमेशा शरारतें और आवारागर्दी करते रहते । कन्हैया और मुरली भी सारा दिन गांव में उत्पात मचाते रहते। कभी वे तलाब के किनारे तो कभी जंगल में घूमने निकल जाते। कभी किसी वस्तु की चोरी–चाकारी करते तो कभी किसी के हाथ से रुपया– पैसा छीन चंपत हो जाते । उनसे उनके परिवार वाले भी तंग थे ।

एक दिन दोनों चोरी –चकारी के लिए घर से निकले । उन्हीं दिनों किसी अपराध के सिलसिले में गांव में पुलिस ने डेरा डाल रखा था। कन्हैया और मुरली की चोरी करने की हिम्मत नहीं हुई। वह दोनों इस बारे में बातें करते करते जंगल की तरफ निकल गए। दोनों को भूख लगी थी। वह एक बेरी से कच्चे–पक्के बेर तोड़कर खाने लगे।

'मुरली यार, अगर कहीं गढ़ा खज़ाना मिल जाए तो मजा आ जाए।' अचानक कन्हैया बोला।

'गढ़ा खज़ाना?' क्या कह रहे हो? हमारे लिए कहां गढ़ा है खजाना? मुरली ने पेड़ से बेर तोड़ कन्हैया की ओर फेंकते हुए कहा।

'जब तक गांव में पुलिस है, चोरी –चकारी भी तो नहीं कर सकते। कुछ भी हरकत की तो पुलिस के हत्थे चढ़ जाएंगे । फिर उनके बरसते हंटर देखा नहीं कमरू की उन्होंने क्या गत बना दी थी। ना बाबा ना।' कन्हैया की आवाज में डर स्पष्ट छलक रहा था।

अब दोनों को प्यास सताने लगी। ऊपर से सूर्य का कहर! आसपास कहीं पानी की एक बूंद नहीं। दोनों पानी की तलाश में भटकने लगे। तभी उन्हें अचानक एक कुटिया दिखाई दी। दोनों उसी और लपके। कुटिया के अंदर झांका। उसमें एक जटाधारी लंबी दाढ़ी साधु बाबा ध्यान मग्न बैठे थे। उनके ललाट पर भभूत से बना शिवलिंग आकार का तिलक शोभायमान हो रहा था। उनके मुख मंडल पर एक अनोखा तेज था जिस की अनोखी शक्ति से वे दोनों उनकी ओर खींचे चले गए। वह वहां जाकर चुपचाप बैठ गए। कुछ देर बाद साधु बाबा ने आंखें खोली।

'कौन हो तुम? क्या चाहते हो बालक?'

'बाबा, पानी की तलाश में आए थे। प्यास के मारे हमारे हलक सूख रहे हैं।'

'हूं'। वहां घड़े में पानी है। जाओ, पी लो। उन्होंने फिर अपनी आंखें बंद कर ली।

दोनों ने घड़े से पानी पिया ।प्यास बुझाने से एक अजीब – सी तृप्ति मिली । वह दोनों साधु बाबा के सामने आकर बैठ गए।

'अब क्या चाहते हो?' साधु बाबा ने थोड़ी देर बाद आंखें खोली।

'क्या आप कोई अवतारी हो बाबा?' कन्हैया ने उनके सामने सिर झुका कर कहा।

'मैं एक मामूली इंसान हूं। सदा सच्चे रास्ते पर चलता हूं। तुम क्या करते हो?'

पता नहीं साधु बाबा की उस दृष्टि में क्या था कि वह दोनों उनके सामने झूठ नहीं बोल सके ।

'बाबा,अभी तो चोरी–चकारी करते हैं। कहीं गढ़ा खज़ाना मिल जाए तो राम कसम कभी चोरी नहीं करेंगे।' कन्हैया ने उत्सुक होकर कहा

'गढ़ा खजाना।' साधु बाबा कुछ सोचते हुए बोले।

'हां हां बाबा, गढ़ा खजाना। क्या हमें आप किसी गढ़े खजाने का पता बता सकते हैं।

सुना है साधु महात्मा अपनी शक्ति से सब देख सकते हैं।'

'खजाना दो तरह से मिलता है।' बाबा ने सहज स्वर में कहा।

'वह कौन–कौन से रास्ते हैं बाबा? आशा से भरे दोनों एक साथ बोल उठे ।

'एक रास्ता स्कूल से होकर जाता है। खूब पढ़ो लिखो,खूब कमाओ?'

'अब हम क्या पढ़ेगे बाबा? यहां गांव में स्कूल कहां हैं,। हां, राम और कुछ और छोकरे दूर के एक स्कूल में जाते हैं। पर दूसरा कौन–सा रास्ता है, हमें वहीं बताओ न बाबा।' वह अनुनय विनय करने लगे।

'दूसरा है मेहनत का रास्ता । जहां भी पसीना बहाओगे,खजाने के द्वार खुलते जाएंगे।'

'बाबा, काम धाम हमारे बस का नहीं, हमें तो बस सरल सीधा रास्ता बताओ, कहते हैं न, हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखो आए। अगर हमें गड़ा खजाना मिला तो आप को अच्छी खासी भेंट चढ़ाएंगे। कन्हैया ने मुरली की ओर देख अपनी बाई आंख को जरा–सा दबाते हुए कहा।'

कन्हैया ने मुरली को आंखों से वहां से रफ्फूचक्कर होने का इशारा किया। मुरली ने आंखें ही आंखों में हामी भर दी। वे वहां से चुपके से नौ दो ग्यारह होना ही चाहते थे कि साधु बाबा ने धीरे से आंखें खोल दी।

'तुम्हें गढ़ा खजाना चाहिए । क्या चोरी करना छोड़ दोगे?'

'बिल्कुल..बिल्कुल।'

'वचन दो कि आज के बाद चोरी नहीं करोगे।' साधु बाबा मानो आश्वस्त होना चाहते थे ।

'लो ..कर लो बात । अगर खजाना मिला तो हमें पागल कुत्ते ने तो काटा नहीं फिर हम चोरी करेंगे। हम अपराध की आग में हाथ क्यों सेकेंगे?' कन्हैया किसी समझदार की तरह बोला।

श सामने का मैदान देख रहे हो। उसमें खज़ाना गढ़ा है। साधु बाबा ने कुटिया से बाहर आ सामने झाड़ियों से भरे एक जमीन के टुकड़े की ओर ईशारा कर हर शब्द तोलते हुए कहा ।

दोनों की बांछें खिल गई।

'मैदान के कौन से स्थान पर गढ़ा है खज़ाना?' मुरली ने उत्साह में भरकर कहा

'इस मैदान में अकूत खजाना है। इसमें किस स्थान पर है यह तो मैदान की खुदाई से पता चलेगा।'

'हम सारा मैदान खोद डालेंगे। हम खजाना निकालेंगे।' दोनों की खुशी का मानो कोई पारावार नहीं था।

'एक शर्त है।' साधु बाबा ने कुछ सोचते हुए कहा।

'हमें आपकी हर शर्त मंजूर है बाबा।'

'मैदान के एक किनारे से खुदाई शुरू करना, जब तक खज़ाना मिल ना जाए खोदते जाना।

'हम ऐसा ही करेंगे। खजाना मिलते ही आपका हिस्सा आप तक अवश्य पहुंचाएंगे।' खुशी के मारे अब उनके पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। 'एक और बात। ' 'हां..हां। बाबा आदेश दीजिए।' 'जब तक खज़ाना न मिले, खुदे स्थान पर अन्न का बीज डालते जाना।'

'पर सिंचाई के लिए पानी कहां से आएगा?' मुरली ने जिज्ञासा प्रकट की।

'सामने तालाब देख रहे हो?' साधु बाबा ने मुस्कुरा कर कहा। वह वास्तव में मुरली के प्रश्न से बेहद प्रसन्न थे ।

'तलाब तो सूखा और गाद से अटा पड़ा है।' कन्हैया के स्वर में हताशा साफ झलक रही थी।

'उसकी सफाई कर देना बस।' इतना कह साधु बाबा पुनः ध्यानस्त हो गए।

अगले ही दिन पौ फूटने से पहले खुदाई शुरू कर दी गई। कुछ दिन कन्हैया और मुरली दोनों अकेले खुदाई कर रहे थे। धीरे–धीरे गांव के अन्य लड़कों को भी इसकी भनक लग गई। खजाने की बात सुनकर वह भी उनका हाथ बंटाने लगे । कुछ ही दिनों में खोदी गई जमीन वर्षा से तर हो गई ।

जैसे–जैसे मैदान की खुदाई होती जाती, ठाठे मारते तलाब के जल से खींच कर उसमें बीज डाल दिए जाते। एक दिन ऐसा भी आया कि उस बंजर मैदान का चप्पा चप्पा खोद डाला गया । किंतु

गढ़ा खजाना कहीं नहीं मिला। हां ! एक बात अवश्य हुई कि पूरे मैदान में अन्न की भरपूर फसल लहलहा उठी। कन्हैया और मुरली खज़ाना ना मिलने के कारण अब आग बबूला हो उठे।

'साधु बाबा तो पूरा पाखंडी निकला। कितना बड़ा झूठ बोला। हमें खूब बेवकूफ बनाया उसने। चलो उसकी पिटाई करते हैं।'

हाथ में लाठी लिए दोनों कुटिया की ओर लपके। देखा तो कुटिया खाली पड़ी थी। साधु बाबा का कहीं अता-पता नहीं था।

'साला भाग खड़ा हुआ। जाएगा कहां। कहीं जंगल में छिपा होगा।' कन्हैया ने मुरली से कहा।

'चलो, जंगल में ढूंढते हैं। एक बार हाथ लग जाए तो साधु को छठी का दूध याद दिला देंगे।' कन्हैया ने जमीन पर लाठी ठोकते हुए कहा।

वह दोनों गुस्से में फड़कते हुए जंगल की ओर कूच कर गए। गांव वाले भी उनके साथ हो लिए। जंगल का कोना-कोना छान मारा गया ।बाबा का कहीं नामोनिशान नहीं था।

समय पर फसल पक गई। कन्हैया और मुरली अनाज की बेच से मिली राशि जेबों में ठूंस गांव लौट रहे थे कि अचानक साधु बाबा से भेंट हो गई।

'क्या बढ़िया दिख रहे हो? तुम्हारा तो कायाकल्प हो गया। क्या चमक है चेहरों पर तुम दोनों के। लगता है मोटा खजाना हाथ लगा है।' बाबा ने मुस्कुराते हुए कहा।

'खजाना?' 'पाखंडी', 'धोखेबाज'। दोनों के चेहरे तमतमा उठे।

'धोखा?' बिल्कुल नहीं। खजाना हाथ नहीं लगा तो गांव वालों को अनाज कहां से बांटा? कन्हैया, अभी तो तुम गांव में स्कूल खोलने की योजना बना रहे थे ? क्या यूं ही बिना पैसे के?'

'आपने कहा था बंजर मैदान में खज़ाना गढ़ा है। '

'बाबा कभी असत्य वचन नहीं बोलता।'

'मैदान का चप्पा चप्पा खोद डाला। कहीं खज़ाने का का नाम भी नहीं था। ढोंगी! आज तुझे मजा चखाते हैं।'

कन्हैया ने बाबा की गिरेबान पर हाथ डाला।

'यह जो जेबों में धन ठूंस कर ले जा रहे हो वह क्या है?' बाबा ने कन्हैया की गिरफ्त से खुद को मुक्त करते हुए कहा।

'वह तो वह तो..अरे हां । धरती मां ने हमें मालामाल कर दिया।' वह अब बाबा की बात का मर्म समझे। मर्म समझते ही दोनों के मुंह खुले के खुले रह गये।

'खज़ाना हमेशा मेहनत से मिलता है। मेहनत से बंजर जमीन को लहलहाती हरियाली में बदल दिया। ऐसा खज़ाना तुम्हें हर वर्ष मिलेगा।'

दोनों अब बाबा के चरणों में लोट रहे थे।

धरती का सम्मान

–श्रीमती शोभा रानी तिवारी
इंदौर

आओ हरियाली से
धरती का सम्मान करें
पौधों को लगाएं और
फूलों से प्यार करें।
यह धरती भारत माँ बनकर
सबको आश्रय देती है
अन्नपूर्णा बनकर हम सबका
लालन पालन करती है

फल फूलों से लदी डालियाँ
झुकना हमें सिखाती हैं,
पथ प्रदर्शक बनकर
प्रगति की राह दिखाती हैं
संकल्पों के वृक्ष लगाकर
कर्तव्यों का निर्वाह करें
आओ हरियाली से
धरती का सम्मान करें।

सावन की रिमझिम बूंदे
घुंघरू की तान सुनाती है
फूलों से महकती क्यारियां
हर दिशाओं को महकाती हैं
इन्द्रधनुष सप्तरंगी चूनर
धरती का सौंदर्य बढ़ाती है
केशरिया रंगों में रंगकर
दुल्हन सी शरमाती है,
स्वर्ण मंजरियों में लिपटी
वसुन्धरा का गुणगान करें
आओ हरियाली से
धरती का सम्मान करें।

पर्यावरण सांसों का उपहार

"पानी के फुहारों से पौधों को सींचती प्रेरणा अपने हरे भरे दोस्तों से अपने संकल्प को साझा कर रही थी कि जब भी मौका मिलेगा आस पास के पार्क या ऐसी ही किसी जगह जहां पौधारोपण किया जा सके वहां हर साल कुछ पौधे जरुर लगाएगी। सिर्फ औपचारिकता भर ही नहीं बल्कि पूरी जिम्मेदारी के साथ देखभाल भी करेगी। हां इतना तो वह कर ही सकती है, अपने पर्यावरण की उखड़ती सांसों को ऑक्सीजन देने के लिए, उन्हें सांसों का उपहार देने के लिए।"

सुजाता प्रसाद

लेखिका,
शिक्षिका सनराइज एकेडमी
मोटिवेशनल ओरेटर
नई दिल्ली

बहुत ही अच्छे लोकेशन पर प्रेरणा ने अपना फ्लैट लिया था। लिविंग रूम, डाइनिंग हॉल, मॉडुलर किचन, बाथरूम सभी आधुनिक रूप से तैयार किए गए थे, हर सुविधा से लैस था प्रेरणा का आशियाना। पेशे से एनवायरमेंट इंजीनियर प्रेरणा ने अपने गमलों के लिए भी अपनी एक बालकोनी की जगह को सुरक्षित कर लिया था। उसने अपनी कल्पना के रंग भरकर बालकोनी को सुसज्जित कर लिया था, जिसमें सुंदर सुंदर रंग बिरंगे फूलों और उनकी पत्तियों का भरपूर प्राकृतिक योगदान मिल रहा था। जहां पानी के छींटें उसे तरोताजा कर देते थे, मिट्टी की खुशबू उसका मन हर लेती थी। फ्लैट्स में एक यही जगह होती है जहां से आसमान को आंख भर के देखा जा सकता है। साथ ही अपने पौधों को जी भर के संभाला जा सकता है और प्यार से उनकी देखभाल की जा सकती है। फुरसत के पलों के इन मूक जीवंत साथियों से बतियाना जिन्हें अच्छा लगता है उनके लिए यह जगह कई बेहतरीन जगहों में से एक होती है। प्रेरणा फूले नहीं समा रही थी।

अपनी रुचि के अनुसार जॉब पाना भी किसी सुखद एहसास से कम कहां होता है। प्रेरणा की कंपनी प्रोग्राम और प्रोडक्ट्स बनाकर पर्यावरण को विकसित करने की दिशा में काम करती है। बीतते समय के साथ खूबसूरत फूलों और उपयोगी हर्ब्स प्लांट्स के साथ प्रेरणा बहुत खुश थी। धीरे धीरे वहां चिड़ियों की चहचहाहट भी खिलने लगी। यह देख कर उसकी खुशी दोगुनी हो गई। अब उसने हैंगिग गमलों के लिए भी जगह तलाश लिया था। एक दिन सामने की सोसायटी में प्रेरणा ने देखा कि धीरे–धीरे सभी अपने उस बालकनी वाले स्पेस को जाल से कवर कर रहे हैं। वह सोचने लगी, पर इसे ढ़कने की क्या जरूरत है? पड़ोसियों से पूछने पर पता चला कि यहां पंछियों का डेरा लग जाता है। उनके द्वारा लाए गए तिनकों के साथ साथ और भी कई चीजें गंदगी फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ती हैं। प्रेरणा ने कहा, अच्छा ऐसी बात है, फिर तो काफी परेशानी होती होगी। पर ये पंछी भी क्या करें। मजबूर होके उन्हें ऐसा करना पड़ा। विकसित होता गया इंसान, आगे और आगे बढता गया और विकास के इस दौर में पेड़ पीछे हटते गए, खत्म होते गए। मुझे आज भी याद है पहले घर के आस पास पेड़

पौधे हुआ करते थे, जिन पर पंछियों का बसेरा रहता था। संध्या बेला में अपने नीड़ की ओर लौटते परिंदों से आसमान भरा रहता था। लेकिन अब वैसा नजारा कहां। बातचीत खत्म होने के बाद प्रेरणा ने कहा चलो अब चलते हैं।

रविवार की सुबह अपने गमलों को निहारते हुए प्रेरणा ने कहा, महानगरों में खुले आसमान को हम जिस जगह पर खड़े होकर अपनी बाहों में भर लेते हैं और धूप को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेते हैं, अब एकमात्र उस जगह को भी कैद करने की जरूरत महसूस होने लगी, आखिर क्यों? गहरी सांस लेते हुए चारों तरफ नजर दौड़ाने के बाद प्रेरणा ने खुद से कहा, होगा क्यों नहीं, ऐसा ही होगा। हमने अपने आशियाने बसाने के लिए अपनी हदों को पार करने की हर हद जो पार कर लिया है। लगातार अपने रहने की कम होती जगहों को लेकर परेशान, बेजुबान पंछियों को भी तो अपने बसेरे की चिंता होगी ही ना। ये लाए गए तिनकों से इन्हीं मैन मेड हरियाली में अपने अस्थाई घोंसले बनाने में जुट जाते हैं, ताकि प्रजनन की प्रक्रिया पूरी की जा सके और उनके नन्हें मुन्ने भी धरती के पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा बन सकें। मानव की तरह भला ये स्वार्थी कैसे हो सकते हैं?

शाम की चाय के साथ स्थानीय न्यूज पेपर हाथ में आते ही प्रेरणा की नजर, संवाद कॉलम की पंक्तियों पर पड़ी, जिसमें लिखा था, आज हम पर्यावरण बचाने के प्रयास में लगे हैं। इसका शुद्ध होना अति आवश्यक है, क्योंकि ये हमारे जीवन के लिए जरूरी है, इसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना व्यर्थ है। हम देख ही रहे हैं कि कैसे आज मनुष्य का अस्तित्व भी खतरे में है। तकनीकी विकास और आगे बढ़ने की होड़ में आदमी अकेला रह गया हैं। आदमी अंदर ही अंदर घुट रहा है, छटपटा रहा है। परंतु उसके पास कोई चारा नहीं बचा है। बेबस इंसान अपने किए की ही भुगत रहा है। आगे सूचना दी गई थी कि जो हमारी बात से सहमत हों वे भी हमारी इस मुहिम का हिस्सा बनें, पर्यावरण को बचाने में मदद करें और अपने को खुश होने का मौका दें। दरअसल हमारे द्वारा शुरू की गई पहल एक विशेष पकृति को अपना रही है। मियावाकी पकृति, वनरोपण की एक पकृति है जिसका आविष्कार मियावाकी नामक जापान के एक वनस्पतिशास्त्री ने किया था। इस पकृति में छोटे–छोटे स्थानों पर ऐसे पौधे रोपे जाते हैं जो साधारण पौधों की तुलना में दस गुनी तेजी से बढ़ते हैं। ऐसा करके घरों के पिछले हिस्सों और परिसरों को उपवन में परिवर्तित किया जाता है। इस अभियान से जुड़ने के लिए इस नंबर पर संपर्क करें या अपने नाम और उम्र के साथ एस एम एस करें।

न्यूज पेपर टेबल पर रखते हुए प्रेरणा ने उसी नंबर पर फोन किया। जानकारी मिली कि इसके अंतर्गत सरकारी कार्यालय–परिसरों, आवासीय सोसाइटिज, विद्यालय परिसरों और सरकारी भूमि पर पौधे रोपने का काम किया जाता है। अगर आप इस समूह का हिस्सा बनना चाहते हैं तो आपका दिल से स्वागत है। आप हमारा व्हाट्स एप ज्वायन कर सकते हैं, जिससे आपको डेली अपडेट मिलती रहेगी और आप अपनी सुविधानुसार अपना अमूल्य योगदान दे सकेंगे।

झूमते हुए पौधों को प्यार से देखते हुए प्रेरणा ने पूछा मैं तो इस अवसर को हाथ से नहीं जाने दूंगी। हवा के झोंकों से हिलते डुलते गमला गार्डन के छोटे छोटे साथी पौधों ने भी अपनी सहमति जता दिया था। ■

मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई–पत्र
editor.adhyatmsandesh@gmail.com
m.facebook.com/अध्यात्म संदेश
गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन
www.gssfoundation.org

मानव उत्थान का नैसर्गिक स्वरूप

सकारात्मक जीवन की प्रासंगिकता का यथार्थ बोध

"किसी मनुष्य के द्वारा अपने जीवन काल में अहिंसक जीवन - शैली के साथ जीवन पूर्ण कर लेना एक 'राजयोगी जीवन' का पर्याय है जो आत्मा के स्वाभाविक गुणों से सम्बद्ध पक्ष होता है । कई बार यह प्राकृतिक रूप से तथा अधिकांश स्थितियों में इसके अभ्यास से इस उच्चता को प्राप्त किया जा सकता है। अधिकांशतः कर्मयोगी मानव जीवन के नियमन एवं संयमन के साथ जप और तप के प्रति समर्पित रहे तथा उन्होंने ध्यान एवं धारणा जैसे श्रेष्ठतम मूल्यों का अनुसरण करते हुए स्वाध्याय को अपने जीवन का आधार बनाकर 'सत्य, प्रेम - अहिंसा' के पथ पर गतिशील होकर मौन साधना से राजयोग के शिखर को प्राप्त कर लिया जो उनके जीवन की सहजता, सरलता एवं विनम्रता के फलितार्थ स्वरुप समाज के लिए पथ अनुगमन का कारण बन गई ।"

डॉ. मेधावी शुक्ला
गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
दिल्ली

सकारात्मक जीवन में पुरुषार्थ की यथार्थता : मनुष्य के द्वारा स्वयं के साथ सर्व आत्माओं के प्रति शुभ भाव से भरपूर रहने की स्थित्ति आत्मा के सशक्तिकरण का परिणाम होता है । किसी भी परिस्थिति में सकारात्मक बने रहने की सलाह व्यक्ति को प्राप्त होने का अर्थ है कि स्वयं के जीवन की स्थित्ति पुण्य से संपन्न है । यदि जीवन में सकारात्मक स्वरुप से स्वयं को परिवर्तित करने की प्रक्रिया के द्वारा एक नए बदलाव की सत्यता अनुभव में आती है तो यह सकारात्मकता जीवन की व्यावहारिकता से पूर्णतरू जुड़ी रहती है । व्यक्तिगत परिवेश के अंतर्गत सम – दृष्टि को विकसित करने की प्रवृत्ति अंतर्मन को इतना समर्थ बना देती है कि सकारात्मक जीवन का आनंद सहजता से परिलक्षित होने लगता है । स्वयं की उपयोगिता को पुरुषार्थ की यथार्थता से कल्याणकारी स्वरुप प्रदान कर देने में आत्मिक कुशलता का मंगलकारी पक्ष सदा विद्यमान रहता है । जीवन की उंचाई का संदर्भ एतिहासिक पृष्ठभूमि में ईमानदारी के गुण मूल्य से सुसज्जित रहता है जिसमें आत्मा की पवित्रता का प्रसंग संबद्ध होने से मानव के उत्थान की व्यापकता चहुँ ओर दृष्टिगोचर होने लगती है। गतिशील जीवन का उद्देश्य सकारात्मकता के परिदृश्य से होकर गुजरता है और व्यक्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करने के संदर्भ एवं प्रसंग की व्याख्या का अनुमोदन सम्पूर्ण निष्ठा से व्यक्त कर देता है। सकारात्मक जीवन के प्रति अनुराग व्यक्ति को किसी भी मनोदशा में सार्थक जीवन के लिए पुरुषार्थ करने हेतु प्रेरणा प्रदान करता है। मानव के द्वारा स्वयं को विकसित करने की प्रक्रिया में श्रेष्ठ संकल्प एवं विकल्प की उपस्थित्ति व्यक्ति को सकारात्मक जीवन के प्रति अपनी जिम्मेदारी को स्पष्ट करती है । जीवन का विराट पक्ष व्यक्ति को स्वयं तथा जगत में उसके योगदान को जवाबदेही के संदर्भ एवं प्रसंग में निरुपित भी करता है।

दृष्टिकोंण की नवीनता का नैसर्गिक भाव : स्वयं के प्रति उच्चता का भाव एक व्यक्तित्व की गरिमा को इतना निखार देता है कि वह सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति अपने दृष्टिकोंण में सकारात्मकता से सुसज्जित हो जाता है। जब नव दृष्टि का नैसर्गिक बोध मानवता को शिखर पर स्थापित करने की चेष्टा करता है तब सकारात्मक जीवन में पुरुषार्थ की यथार्थता के लिए बड़ी गुड़ता से जतन किए जाते हैं। व्यक्ति की आंतरिक दृष्टि स्व–मूल्यांकन से वर्त्तमान जीवन की अच्छाई को उपयोगी बनाने में इसलिए जुट जाती है ताकि स्वयं के सात्विक अस्तित्व को निर्मित करने में मदद प्राप्त हो सके। जीवन में ज्ञान एवं तत्व मीमांसा आत्मा को शुद्धता और मुक्ति के प्रसंग से जोड़ते हैं क्योंकि यह व्यक्ति के लिए स्वयं के दृष्टिकोंण की नवीनता का वह नैसर्गिक भाव होता है जिसमें सार्थकता स्वमेव प्रतिबिम्बित हो जाती है। स्वयं के सकारात्मक जीवन को स्वीकार करते हुए सम्मानित कर देना अपने दृष्टिकोंण का वह उजला पक्ष है जहाँ जीवन की सार्थकता नैसर्गिक रूप से गौरवान्वित होती है। मानव जीवन व्यवहार में जब सकारात्मक उर्जा अपनी वास्तविकता के साथ कार्यरत होती है तब व्यक्ति को यह अहसास होने लगता है कि आत्मिक जगत में गुण एवं शक्ति मौलिक स्वरुप में नीहित हैं। वर्तमान जीवन में उपलब्ध सकारात्मकता पूर्णतरू नैसर्गिक होती है और वह निजी स्तर पर उपयोगी को सिद्ध करने के लिए तत्पर रहती है। व्यक्ति के जीवन का ऐसा सुखद संयोग जिसमें वह एक ओर स्वयं को सकारात्मक जीवन की सम्पूर्णता से समृद्ध है वहीं दूसरी ओर समाजोपयोगी बन जाने के सुख को संरक्षित कर लेने की इच्छा शक्ति भी रखता है। स्वयं की अंतर्निहित सकारात्मकता को सर्व के भीतर ढूंढने का शुभ–भाव व्यक्ति को इतने गहरे स्तर पर अभिप्रेरित कर देता है कि व्यक्ति जीवन की सार्थकता तक पहुँच जाता है । आत्मिक जगत की मौलिकता के परिदृश्य में सकारात्मक जीवन का यथार्थ सन्निहित रहता है जो व्यक्ति को समयानुसार यह बताता है कि आखिर जीवन की सार्थकता के कितने उपयोगी परिणाम होते हैं ।

सहज विकास की सुखद स्थितियां : जीवन की विविधता का एक वृहद पक्ष सहज विकास होता है जिसमें किसी मानदंड की आवश्यकता नहीं होती बल्कि यह समय एवं परिस्थितियों के प्रवाह में धीरे – धीरे, क्रमबद्ध अथवा अनायास किसी स्वरूप में ढल जाने की अवस्था होती है । बाल हृदय की गहराईयों में छिपी हुई समाज की 'भावी सुंदर कल्पनाओं' को निखारने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोंण की आवश्यकता होती है। गतिशील जीवन का उद्देश्य अत्यधिक विशाल होता है जिसमें परिपक्वता से युक्त स्थितियां पूर्णता से सुदृढ़ता की ओर गतिमान होती हैं। **" मानव का दानव होना उसकी हार है , मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है , मनुष्य का मानव होना उसकी जीत है। "** डॉ. राधा कृष्णन द्वारा रचित यह कथ्य पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है क्योंकि मानव को किसी भी स्थिति में दानवीय प्रवृतियों का गुलाम नहीं होना चाहिए जो उसकी हार का प्रतीक है जबकि मानव का महामानव होना एक अपवाद स्वरूप है जो किसी चमत्कार के बराबर है लेकिन मनुष्य को सम्पूर्णता के साथ मानव बने रहना चाहिए जो मनुष्य की विजय का प्रमाण है ।

महामना विनोवा भावे जी ने अपने महान ग्रंथ 'स्थित प्रज्ञ दर्शन' में इस तथ्य एवं सत्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि आत्मा का सहज स्थिति में अपनी मूलभूत प्रवृतियों के साथ सहजता एवं सरलता से युक्त रहना ही 'स्थितप्रज्ञता' का सूचक है। इस अवस्था के अतिरिक्त कुछ घटित होने अथवा करने की स्थिति में आत्मा अपने स्वरूप से विचलित होती है शेष स्थिति में वह श्रेष्ठता से युक्त अपने वास्तविक अर्थात् स्थित प्रज्ञ अवस्था में विराजमान रहती है।

सार्थक जीवन का संतुष्टिगत स्वरूप : स्वयं के जीवन में स्वाभाविक परिवर्तन के साथ – साथ जब अहिंसक – जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोंण को अपनाने की बात प्रकट होती है तब व्यक्तिगत स्तर पर सकारात्मकता का बोध होता है। मानव उत्थान के सन्दर्भ में सकारात्मक प्रयास की श्रृंखला के अनेक उदाहरण समाज में घटित होते हैं परन्तु आत्मिक जगत से स्वयं की सार्थकता के लिए मनोयोग से पुरुषार्थ करना जीवन की संतुष्टि का कारक बन जाता है। राजयोग आत्मा के उत्थान का प्रेरणात्मक पक्ष है जो निरंतर सार्थक हो जाने के लिए मददगार भूमिका का निर्वहन करता है और आत्मा अपने सक्षम साधनों अर्थात् मन, वचन ,कर्म के साथ समय, संकल्प, संबंध एवं स्वप्न की पवित्रता से हर क्षण को उपयोगी बनाकर गतिशील रहने का पुरुषार्थ करती रहती है । अहिंसक जीवन शैली अत्यंत सूक्ष्म जगत की अवधारणा है जिसे सृष्टि पर अनेक महान आत्माओं ने उदाहरण स्वरूप जीया है जो वर्तमान पीढ़ी के लिए अथवा समाज को सही दिशा प्रदान करने में अभिप्रेरणात्मक आभा मंडल का कार्य करता है । अंतर्मन को

स्थूलता से अनासक्त भाव में ले जाना गीता का महान उपदेश है और स्वयं को सूक्ष्म पुरुषार्थ से परिष्कृत करना जीवन की सार्थकता का व्यावहारिक स्वरुप है जिसे निरंतर अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। जीवन की भौतिकता को प्राप्त कर लेने में सिद्धस्त 'मानव' स्वयं को इस लौकिकता से संबंध जोड़कर आखिर संतुष्ट होने का दावा करते हुए धर्म – कर्म की संवेदनशीलता को स्वीकार कर ही लेता है। कई बार व्यक्तिगत जीवन का मूल्यांकन करने पर 'अंतर्दृष्टि एवं बाह्य दृष्टि' के प्रति विरोधाभास की स्थितियां बनती हैं और स्वयं के जीवन की लौकिकता उसे अलौकिक जीवन की ओर बढ़ जाने के लिए सहयोगी भी बन जाती है।

अहिंसक जीवन में समर्पण का आनंद : जीवन के प्रसंग में धर्म के कर्म से, अध्यात्म के पुरुषार्थ से तथा राजयोग के ध्यान से स्वयं की संबद्धता को सदाकाल के लिए बनाकर रखना मनुष्य के उत्थान पक्ष के लिए एक वृहद चुनौती भरा स्वरूप होता है। सृष्टि पर अहिंसक जीवन शैली के रहस्य को जिन मनुष्य आत्माओं ने व्यावहारिक जीवन के साथ अपना लिया उन मानव आत्माओं का जीवन तो सार्थक हुआ तथा वे सभी परम आदरणीय स्वरूप में जगत के लिए प्रेरणा स्रोत बन गए।

स्वयं को समर्पित अवस्था के लिए तत्पर करने का अर्थ निमित्त भाव की स्थिति का अनुपालन होता है जो व्यक्ति को कर्म के दबाव से मुक्त कर देता है जिसमें मनुष्य को उपराम हो जाने में मदद प्राप्त होती है। अहिंसक जीवन – शैली मानवीय मनोदशा का श्रेष्ठतम भाव है जो 'दातापन' की विचारधारा से गहराई तक सबंध रखता है क्योंकि मानवीय भाव का उच्चावचन व्यक्तिगत जीवन की स्थिति को कई बार प्राप्ति के रूप में विश्लेषित करता है जो अनंत संकुचित स्वरुप का परिचायक बन जाता है। सामाजिक जगत में मानव उत्थान की अवस्था सदा से ही विराटता से युक्त रही है जिसमें आत्मा के उच्च मूल्यों का परिपालन होता है जिसके अंतर्गत अहिंसक जीवन शैली विकसित करने हेतु धर्म, अध्यात्म एवं राजयोग जैसी सूक्ष्म विवेचनाएँ कार्यरत रहती हैं जिसकी परिणिति जीव जगत के मध्य सुख, शांति एवं आनंद के रूप में परिलक्षित होती है। ■

शिष्ठ सौंदर्य

सच्चिदानंद किरण
भागलपुर, बिहार

रूप के निखार में अपनी
वास्तविकता की परख यूं
ही जिसमें मैं कौन हूं, यह
दिख न पाये सच अदृश्य

में साक्षात् दर्शन हो जाये
मेरी पहचान बने कृतज्ञता
की सफर में धर्म में सेवा
की प्रत्यक्ष रूप में अपनी

सहज सरल सलील सौम्य
स्वभाव के आदर्श आचार
आचरण के कर्मवचन को
निर्णय निर्माण कार्यक्रम के

सार्थक सृजन में एक नई
ज्योत जलाने में अमरत्व
की शाख निर्वाह करने में।
आशा के आस्था में जो

भावना प्रभावी हों
वहीं तो दिव्यता
के हमसफर सा सपनों
का दिव्य संदेश से

प्रेरित होकर ज्योतिर्मय में
आस्थावान से स्थाईत्व
स्वरूप से संचारित
होता रहे, जीवन में

आनंद ने एक प्रसन्नोचित
प्रशांत जीवन दर्शन
की छवि रवि–रथ पर
दिव्यांश दिव्यांचल की

ओर अग्रसर हो
आशीष आशीर्वाद पाने
की इष्ट देव–देवियों के
अनुपम अनुशिष्ठ ज्ञान

प्राप्ति में एक नई
चेतना का उद्घोष कर
साहित्य की बहती
ज्ञान गंगा की पवित्र

धारा में डुबकी लगाते
हुए परम पूज्य परमेश्वर
के चरणों में नतमस्तक हो
अंतः से पुलकित हो

ललाट पर तिलक
लगाये ज्योतिर्मय में
मान मर्यादा पुरुषोतत्व की
शान बढ़ाते बुद्धिष्ट

की कार्यक्षमता को
कायम रख जीवनोपयोगी
सुपथ के राहों पर
चल चलते जाना ही

कर्म–धर्म हित में
स्वयं घर–परिवार समाज
देशप्रेम की सेवा महान
सर्वश्रेष्ठ नाम धाम––––––

साकेत : रामायण के परित्यक्त पात्रों का पुनर्पाठ

साकेत की कथा वस्तु में मुख्य रूप से आदर्शवादी प्रेम और रामकथा में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला का विरह वर्णन है जिसके अंतगर्त भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और उसमें नारियों की स्थिति का वर्णन हुआ है। गुप्तजी ने 'साकेत' में रामायण के परित्यक्त, विस्मृत एवं उपेक्षित प्रसंगो व पात्रों को ही प्रकाश में लाने का प्रयास किया है, एक ओर कवि ने सम्पूर्ण राम-कथा भी कह देनी चाही वहीं दूसरी ओर मध्यवर्गीय जीवन में धर्म और अध्यात्म के महत्व को भी बताने की कोशिश की

सिद्धार्थ कुमार
छात्र, स्नातकोत्तर हिंदी
गया, बिहार

भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रस्तोता मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महान काव्यग्रंथ साकेत का प्रकाशन सन १९३१ में हुआ, जिसमें गुप्त जी ने रामकथा के उन मार्मिक स्थलों से साहित्य जगत का सम्बन्ध स्थापित कराया जिनका अन्य पारम्परिक पूर्ववर्ती राम काव्य में दर्शन नहीं हो पाया था। जिस समय 'साकेत' की रचना हो रही थी, उस समय नवजागरण और जनतांत्रिक आन्दोलन के तहत नारी मुक्ति, चेतना, मर्यादा, शौर्य, उत्सर्ग आदि को लेकर समाज जाग्रत हो रहा था।

सीता तो राम के साथ वन चली गयी, किन्तु उर्मिला लक्ष्मण के साथ वन न जा सकी। इस कारण उनके मन में विरह की जो पीड़ा निरंतर प्रवाहित होती है उसका जैसा करुण चित्रण राष्ट्कवि ने किया है, वैसा चित्रण अन्यत्र दुलर्भ है।

साल रही सखि, माँ की झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे–
'मिला न वन ही न गेह ही तुझको!' जात तथा जमाता समान ही मान तात थे आये,
पर निज राज्य न मँझली माता को वे प्रदान कर पाये!

कवि यह बताना चाहता है की राम, लक्ष्मण, बुद्ध आदि के त्याग से सीता, उर्मिला, यशोधरा, आदि का त्याग कहीं से भी कम नहीं था।

'साकेत' का आधार रामकथा होने पर भी इसके नायक राम नहीं हैं, नायक नायिका के रूप में लक्ष्मण और उर्मिला हैं, जो कोई अवतार नहीं अपितु मृत्युलोक के नियम में बंधे आम मानव हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ साथ गुप्त जी नवीन भारत के राष्ट्रकवि भी थे इसलिए 'साकेत' में भी उनकी भाषा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है–

राजा हम ने राम, तुम्ही को है चुना, करो न तुम यों हाय, लोकमत अनसुना,
जाओ, यदि जा सको, रौंद हम को यहाँ, यह कह पथ में लेट गये बहुजन वहाँ।

मैथिलिशरण गुप्त की काव्य कला, संयोग और वियोग श्रृंगार के मिश्रण और प्राचीन आधार पर नवीन कथावस्तु वाला यह प्रबन्ध काव्य इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी काफी प्रासंगिक और लोकप्रिय है। क्योंकि इसमें युगबोध है, स्त्रीवादी चेतना है, समाज हेतु आदर्श है, नायकत्व की अवधारणा में बदलाव है, उर्मिला का सहनशील होना, कला वाद्ययंत्र आदि में निपुण होना समाज हेतु उदहारण है। आदर्शवादी प्रेम, मानवीय गुणों से युक्त पात्र और सरयू नदी के बालू पर बसा "साकेत" अर्थात 'अयोध्या" केंद्र में है, जो वर्तमान राजनीति में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई-पत्र
editor.adhyatmsandesh@gmail.com
m.facebook.com/अध्यात्म संदेश
गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन
www.gssfoundation.org

सनातन धर्म प्रवर्तक आदि शंकराचार्य

डॉ. अलका यतींद्र यादव
बिलासपुर, छत्तिसगढ़

'आठ वर्ष की आयु में दक्षिण से निकले और नर्मदा तट के ओमकारेश्वर में गुरु गोविंद. पाद के आश्रम पर जा पहुंचे। जहां समाधिस्थ गुरु ने पूछा, "बालक! तुम कौन हो"?

बालक शंकर ने उत्तर दिया," स्वामी! मैं ना तो मैं पृथ्वी हूं, ना जल हूं ना अग्नि, ना वायु, ना कोई गुण धर्म हूं। मैं इंद्रियों में से कोई इंद्रिय नहीं हूं। मैं तो अखंड चौतन्य हूं।"

बालक के ऐसे उत्तर के साथ गोविंदपाद को एक योग्य शिष्य मिल गया! जिनका शिष्य महान दार्शनिक एवम धर्म प्रवर्तक आदि शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिनकी पदचाप केरल से लेकर केदारनाथ के पहाड़ों पर और द्वारकापुरी से लेकर पुरी के सागर तट पर आज भी जीवंत है। जिनके उपदेश भारत के गुरुकुल और आश्रमों में आज भी गुंजायमान हैं। जिनका वेदान्त दर्शन अपने आप में परिपूर्ण हैं। सनातन धर्म के नीति मूल्यों के पतन के समय उनकी पुनःस्थापना करते हुए आदि शंकराचार्य ने चार मठों की स्थापना की। उत्तर दिशा में बद्रिकाश्रम में ज्योति पीठम अथर्ववेद के आधार पर की। पश्चिम दिशा द्वारका में शारदा पीठम की स्थापना सामवेद के आधार पर, दक्षिण दिशा श्रृंगेरी में शारदा पीठम सामवेद के आधार पर और पूर्व दिशा जगन्नाथ पुरी में गोवर्धन पीठम की स्थापना ऋग्वेद के आधार पर की।

हिंदुओं को संगठित करने और जातिवाद को समाप्त करने के लिए आदि शंकराचार्य ने दशनामी संप्रदाय की भी स्थापना की। गिरी, पर्वत और सागर जिनके ऋषि भृगु हैं। पुरी, भारती और सरस्वती इनके ऋषि शांडिल्य हैं। वन और अरण्य के ऋषि कश्यप वहीं तीर्थ और आश्रम के ऋषि अवगत हैं। इसे संत संप्रदाय कहा जाता है। दशनामी के 13 अखाड़े को कुंभ में सर्वप्रथम स्नान करने गौरव इस लिए प्राप्त हुआ है।

आदि शंकराचार्य के शिष्य चारों वर्णो में से हुए। जिनमें पद्मपाद (सनंदन) हस्तमालक, मंडन मिश्र और तोटक (तोटकाचार्य) हैं।

सामूहिक अथवा दूसरों की संपत्ति का विनाश करके हम स्वयं नष्ट होते जा रहे हैं

आज भी प्रति वर्ष असंख्य व्यक्ति प्रदूषण के कारण अकाल मृत्यु का शिकार हो रहे हैं। बीमारियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। हवा हो या पानी हो सब प्रदूषित हैं। खाद्य पदार्थ विशाक्त होते जा रहे हैं। हमें विभिन्न माध्यमों से प्रकृति को नष्ट करने के इस दुश्चक्र को तोड़ना होगा। ये तभी संभव है जब हम अपनी जीवन शैली को परिवर्तित करें। हमें प्रकृति की ओर लौटना होगा। अपनी जीवनशैली को प्राकृतिक बनाना होगा। हमें अपने निरंकुश उपभोग पर अंकुश लगाना होगा। हमें अनिवार्यतः अपरिग्रह का पालन करना होगा। अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह व उपयोग न करना आध्यात्मिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहा है लेकिन आज यही अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अनिवार्य हो गया है।

सीताराम गुप्ता
पीतम पुरा, दिल्ली

मानस के उत्तरकांड में गोस्वामी तुलसीदास एक स्थान पर लिखते हैं कि पर संपदा **बिनासि नसाहीं, जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं।** अर्थात् दूसरों की संपत्ति को नष्ट करने वाले स्वयं नष्ट हो जाते हैं जैसे खेती का नाश करने के बाद ओला स्वयं भी नष्ट हो जाता है। आज के संदर्भ में तुलसीदास की ये पंक्ति अत्यंत प्रासंगिक व विचारणीय है। बात आज के बिगड़ते हुए भौतिक परिवेश अथवा पर्यावरण प्रदूषण की हो अथवा हमारी जीवन शैली अथवा उदात्त जीवन मूल्यों की हम आत्मघाती हो चुके हैं। हम जिस डाल पर बैठे हैं उसी को काट रहे हैं। इसके अतिरिक्त अपने लाभ के लिए अथवा दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए भी हम दूसरों का अहित करने में कम आनंद नहीं लेते लेकिन वास्तविकता ये है कि हमारा इस प्रकार का आचरण दूसरों के साथ–साथ हमारा भी उतना ही अहित करता है जितना दूसरों का। दूसरों का अहित करने या होने देने के प्रयास में कई बार तो हम अपना सर्वनाश ही कर बैठते हैं।

एक कहानी याद आ रही है। एक माली और कुम्हार पास–पास रहते थे। माली सब्जियाँ उगाता था तो कुम्हार मिट्टी के बरतन बनाता था। उन दोनों के पास एक ऊँट था जिस पर वे दोनों ही अपना सामान लादकर पास के कस्बे में ले जाकर बेच देते। एक बार दोनों ऊँट पर सामान लादकर कस्बे की ओर जा रहे थे। ऊँट की पीठ पर एक ओर माली की सब्जियाँ लदी हुई थीं तो दूसरी ओर कुम्हार के बरतन लदे हुए थे। माली ऊँट की रस्सी को पकड़े हुए आगे–आगे चल रहा था तो कुम्हार ऊँट के पीछे–पीछे। तभी अचानक ऊँट ने अपनी लंबी गरदन पीछे की ओर घुमाई और सब्जियाँ खाने लगा। कुम्हार ने ऊँट को सब्जियाँ खाते हुए

देखा पर रोका नहीं। उसने अपने मन में कहा कि ऊँट माली की सब्जियाँ खा रहा है तो इससे मुझे तो कोई नुकसान नहीं होगा। ऊँट मेरे बरतन तो खाने से रहा फिर मैं क्यों इसे सब्जियाँ खाने से रोकूँ।

कुछ ही देर में ऊँट काफी सब्जियाँ खा गया जिससे ऊँट पर लदे हुए सामान का संतुलन बिगड़ गया और सारा सामान नीचे गिर गया। गिरने से शेष सब्जियाँ तो बच गई पर कुम्हार के सारे बरतन चकनाचूर हो गए। बरतन टूटने के बाद कुम्हार को भान हुआ कि यदि वो ऊँट को सब्जियाँ नहीं खाने देता तो उसके बरतन भी नहीं टूटते लेकिन अब पछताना बेकार था। यही स्थिति आज हम सबकी हो चुकी है। हम दूसरों का या सामूहिक नुकसान रोकने के लिए बिलकुल आगे नहीं आते और इसके परिणामस्वरूप हमारा जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष नुकसान होता है उसे वहन करने को अभिशप्त हैं। ये संपूर्ण विश्व हमारी सामूहिक संपत्ति ही तो है। इस पृथ्वी पर उपलब्ध सभी प्रकृतिक संसाधनों को बचाना हमारा ही दायित्व है। जो लोग इन्हें नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं उन्हें रोकना भी हमारा ही दायित्व है।

हालात इतने खराब हैं कि पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति को देखते हुए इस बार उच्च न्यायालय ने दिल्ली व राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पटाखों की बिक्री व प्रयोग पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगा दिया था लेकिन वास्तविकता ये है कि प्रतिबंध के वावजूद पटाखे खूब बिके और खूब चलाए गए। परिणामस्वरूप प्रदूषण का स्तर खतरनाक से भी ऊपर पहुँच गया। इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। यही कि कुछ लोगों की भूमिका अत्यंत नकारात्मक एवं जीवनविरोधी है। वे दूसरों के विनाश का कारण बनने के साथ–साथ स्वयं भी नष्ट होंगे इसमें संदेह लेकिन अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इन लोगों को रोकना भी हमारा ही दायित्व है। ये सरल नहीं लेकिन अनिवार्य है क्योंकि ये हमारे अस्तित्व की रक्षा के साथ–साथ हमारे बच्चों और बुजुर्गों के स्वास्थ्य से भी जुड़ा है। साथ ही ये असंख्य रोगियों की स्थिति से भी जुड़ा है।

कुछ लोग त्योहारों पर पटाखे चलाने को धर्म से जोड़कर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। पटाखे चलाने का किसी धर्म से कोई संबंध नहीं है। साथ ही प्रसन्नता के लिए पटाखे चलाने का भी कोई औचित्य नहीं। पटाखों से मनुष्य ही नहीं प्रकृति भी बुरी तरह से प्रभावित होती है। शोर व प्रदूषण से पशु–पक्षी परेशान हो जाते हैं। इससे जैव–विविधता को भी नुकसान पहुँचता है। कुछ शोध बतलाते हैं कि पटाखे छुड़ाना मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति को भी प्रदर्शित करता है। प्रायः देखने में आता है कि अधिकांश लोग दूसरों को डराने के लिए चुपचाप पटाखे चला देते हैं और जब दूसरा डर या सहम जाता है तो उन्हें बहुत खुशी मिलती है। ये हिंसा और आतंक का ही दूसरा रूप है। चुनावों में जीत के बाद जिस तरह से आतिशबाजी की जाती है उसमें जीत की खुशी कम तथा विरोधियों व आम लोगों पर अपने आतंक का प्रभाव छोड़ना अधिक होता है।

आज हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि कुछ लोग देश छोड़कर स्थायी रूप से विदेशों में बसने के लिए जा रहे हैं। कब तक और कहाँ तक भागते फिरेंगे? आज इस देश को नरक बना दिया है तो आगे जहाँ रहेंगे उसके साथ भी कमोबेश ऐसा ही करेंगे। लेकिन सब लोग देश छोड़कर भी अन्यत्र नहीं जा सकते। यदि हालात और बिगड़े तो क्या होगा? हम क्या करेंगे? वास्तव में हम कुछ नहीं कर पाएँगे और घुट–घुटकर मर जाएँगे। प्रश्न उठता है कि हम इसमें क्या कर सकते हैं। आज हमारे जीवन का एक मात्र उद्देश्य खूब कमाना और खूब खर्च करना हो गया है। हमें अपने इस उद्देश्य को बदलना होगा। इसके कारण ही आज हमारी जीवनशैली पूरी तरह से विकृत हो चुकी है। रही–सही कसर उपभोक्तावाद ने पूरी कर दी है। आज हम ऐसी अनेक वस्तुओं का प्रयोग कर रहे हैं जिनकी हमें बिलकुल भी ज़रूरत नहीं है। आराम व विलासिता की वस्तुओं ने हमें निष्क्रिय बना दिया है। फास्ट फूड ने हमें रोगी बना दिया है।

गलत खानपान व गलत आदतें हमारे स्वास्थ्य के लिए हा. निकारक है। अधिक वस्तुओं के उपभोग के कारण अधिक उत्पादन किया जा रहा है। अधिक उत्पादन के कारण उद्योगों का विस्तार हो रहा है। यही सब समस्यों का कारण है। यदि हमने स्वयं को नहीं बदला तो हमारा नहीं तो हमारी अगली पीढ़ियों का घुट–घुटकर मरना निश्चित है।

सामूहिक अथवा दूसरों की संपत्ति...

उगते सूर्य को जल क्यों देते हैं?

उगते हुए सूर्य को जल देने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। बहुत से लोग आज भी इसका पालन करते हैं इसके पीछे धार्मिक मान्यता हीं नहीं बल्कि वैज्ञानिक आधार भी है। धार्मिक दृष्टि से बात करें तो बिना सूर्य को जल अर्पित किये भोजन करना महा पाप है। इस बात का उल्लेख 'स्कंद पुराण' में मिलता है।

स्कंद पुराण में इस बात का उल्लेख संभवतः इसलिए किया गया है क्योंकि सूर्य और चन्द्र प्रत्यक्ष देवता हैं। इनकी किरणों से प्रकृति में संतुलन बना रहता है। इन्हीं के कारण अनाज और फल–फूल उत्पन्न होते हैं। इसलिए इनका आभार व्यक्त करने के लिए प्रातः काल जल अर्पित करने की बात कही गयी है।

पंडित रूपम व्यास
संकलन
महर्षि सांदीपनी आश्रम
उज्जैन, मध्य प्रदेश

धार्मिक कारण की अपेक्षा उगते सूर्य को जल देने के पीछे वैज्ञानिक कारण अधिक प्रभावी है। जल चिकित्सा और आयुर्वेद के अनुसार प्रातः कालीन सूर्य को सिर के ऊपर पानी का बर्तन ले जाकर जल अर्पित करना चाहिए द्य जल अर्पित करते समय अपनी दृष्टि जलधार के बीच में रखें ताकि जल से छनकर सूर्य की किरणें दोनों आंखों के मध्य में आज्ञाचक्र पर पड़े। इससे आंखों की रोशनी और बौद्धिक क्षमता बढ़ती है जल से छनकर सूर्य की किरणें जब शरीर पर पड़ती हैं तो शरीर में उर्जा का संचार होता है। शरीर में रोग से लड़ने की शक्ति बढ़ती है साथ ही आस–पास सकारात्मक उर्जा का संचार होता है जो जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

आधुनिक विज्ञान. . . जब हम सूर्य को जल चढ़ाते हैं और पानी की धारा के बीच उगते सूरज को देखते हैं तो नेत्र ज्योति बढ़ती है, पानी के बीच से होकर आने वाली सूर्य की किरणों जब शरीर पर पड़ती हैं तो इसकी किरणों के रंगों का भी हमारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जिससे विटामिन डी जैसे कई गुण भी मौजूद होते हैं. इसलिए कहा गया है कि जो उगते सूर्य को जल चढ़ाता है उसमें सूर्य जैसा तेज आता है।

ज्योतिषशास्त्र में कहा जाता है कि कुण्डली में सूर्य कमजोर स्थिति में होने पर उगते सूर्य को जल देना चाहिए। सूर्य के मजबूत होने से शरीर स्वस्थ और उर्जावान रहता है। इससे सफलता के रास्ते में आने वाली बाधाएं दूर होती हैं।

जरा गौर करें, हमारी परम्पराओं के पीछे कितना गहन विज्ञान छिपा हुआ है. . . ये इस देश का दुर्भाग्य है कि हमारी परम्पराओं को समझने के लिए जिस विज्ञान की आवश्यकता है वो हमें पढ़ाया नहीं जाता और विज्ञान के नाम पर जो हमें पढ़ाया जा रहा है उस से हम अपनी परम्पराओं को समझ नहीं सकते।

उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा : वास्तविक अस्तित्व का बोध और निमित्त स्वरूप की स्मृति

यदि निजी जीवन की वैचारिक प्रबुद्धता को सकारात्मक उर्जा से सम्बद्ध करने की पहल आरम्भ होती हे तब हृदय की भावना को गतिशीलता का सम्बल नैसर्गिक रूप से प्राप्त हो जाता है। आदिकाल के श्रेष्ठतम् प्रयासों एवं उपलब्धियों का मूल्याँकन किया जाए तो यह पता चल जाता है कि इसके केन्द्र में विशुद्ध विचारगत् शक्ति का निरन्तर सहयोग प्राप्त होने की स्थितियाँ कार्यरत रही हैं। गतिशील जीवन के प्रति संवेदनाओं की सहभागिता का भावार्थ पवित्र भावनाओं की प्राप्ति से होता है जिसमें अर्न्तमन के द्वारा सम्बन्धों की गहरायी को अनुभूति के धरातल पर स्वीकार किया जाता है। बाह्य जगत के द्वारा भले ही यह अनुमान लगा लिया जाए कि उन्नति हेतु आधारभूत संरचना का विशाल स्वरूप विद्यमान होना चाहिए लेकिन आन्तरिक दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में सब कुछ होते हुए भी व्यक्तिगत् स्तर की भौतिकता धराशाही हो जाया करती है।

डॉ. अजय शुक्ला

गोल्ड मेडलिस्ट इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स मिलेनियम अवार्ड
डायरेक्टर, स्प्रीचुअल रिसर्च स्टडी एंड एजुकेशनल ट्रेनिंग सेंटर
देवास, मध्य प्रदेश

आन्तरिक शक्ति : विकास की दिशा में अग्रसर होने के लिए स्वयं के अस्तित्व की वास्तविक पहचान होना आवश्यक होता है ताकि हम प्रगति के रहस्य को अनुभव के स्तर पर स्वीकार कर सकें। जीवन में आगे बढ़ने के कई विकल्प आधुनिक युग में विद्यमान हैं लेकिन निजी रूप से विभिन्न प्राप्तियों के पश्चात् भी संतुष्टि हेतु भाग–दौड़ किसी न किसी स्थिति में आज भी बनी हुई है। व्यक्तिगत अनुभूतियाँ आखिर उन्नति के प्रति अधिक संवेदनशील क्यों रहती हैं और प्रत्येक अवसर की उपलब्धता भी उन्हें स्थूलता के बन्धन से मुक्त क्यों नहीं करा पाती हैं। सकारात्मक उर्जा के द्वारा आन्तरिक शक्तियों के प्रति नतमस्तक होना तथा पुरूषार्थ की स्थिति को बोध की सीमाबद्धता तक सुनिश्चित करना कई बार निमित्त स्वरूप की स्मृति से स्वयं को अलग करने जैसा प्रतीत होता है। मानव जाति की उन्नति को उन्मुक्तता के परिवेश से कैसे सम्बद्ध किया जाए यह एक विचारणीय प्रश्न है जो समयानुसार बन्धनों से मुक्ति की व्याख्या को पुर्नजीवित करने की चेष्ठा किया करते हैं। स्वयं की वास्तविक शक्तियों का ज्ञान होना, उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करने में सहायक होता है लेकिन अनुभूतियों की गहरायी तक पुरूषार्थ की तीव्रता को बनाये रखना सही रूप से निमित्त स्थिति का आधार होता है। अपनी आत्मिक शक्ति के प्रति सजगता के साथ व्यवहार किया जाना इस बात का प्रमाण होता है कि व्यक्तिगत जीवन को समग्र विकास की ओर गतिशील रहने के लिए अभिप्रेरित कर दिया गया है। उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा इस सत्य को सदा उद्घाटित करने में संलग्न होती है जिसमें यह अभिव्यक्त किया जाता है कि सर्व सम्बन्धों को एक सुनिश्चित प्राप्ति की स्थिति से पूर्ण रूपेण आबद्ध करने के लिए स्वयं को संकल्पबद्ध करना होगा तभी स्वार्थ से जुड़े बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो सकेगा।

यदि स्वयं की मूलभूत सक्षमता के बारे में व्यक्तिगत समझ विकसित हो जाए तो समय–समय पर उन्नति के मापदण्डों को तय करते हुए विधिवत मूल्याँकन के महत्वपूर्ण कार्यों

को संपादित किया जा सकता है। जीवन की स्थूलता ने मानवीय मूल्यों पर इतना दबाव बढ़ा दिया है कि व्यक्ति को अपनी आन्तरिक शक्तियों से अनभिज्ञता हो गयी है और वह चाहकर भी स्वयं से अनजान बना हुआ है जिसका परिणाम पारदर्शी जीवन के निरन्तर अभाव के रूप में उसके समक्ष विद्यमान है। निजी जीवन से लेकर सामाजिक परिवेश में अपनी उपस्थिति दर्ज करने की अभिलाषा आज विभिन्न स्वरूपों में परिलक्षित होती है लेकिन उपलब्धियों से भरपूर स्थितियों की चाहत हेतु आन्तरिक शक्तियों को अनुभूति के साथ क्रियान्वयन के व्यावहारिक पक्ष तक जाकर कार्य करने की अनिवार्यता को पूर्णतः आत्मसात करना होगा। उन्नति के शिखर तक पहुँचना जीवन का ध्येय बन जाए तो निश्चित ही उन्मुक्तता के वातावरण में विचरण करना आसान हो जाएगा क्योंकि स्वयं के द्वारा स्वयं के अस्तित्व को बोधगम्यता तक स्वीकार करते हुए अन्ततः निमित्त भाव की स्मृति से सात्विक सम्बन्धों के प्रति समर्पित हो जाना कल्याणकारी स्थितियों का प्रमाण होता है। अतःकरण की जागृति द्वारा आत्मिक शक्तियों का अधिकतम् उपयोग जीवन के व्यापक परिदृश्य को रेखाँकित करता है जिसमें सक्षमता के सामाजिक सरोकार अपनी सार्थक भूमिका को निभाते हुए मनुष्यता को निरन्तर गौरवान्वित करने का सफल प्रयास सम्पन्न किया करते हैं।

समग्र विकास : व्यक्तिगत जीवन के यथार्थ को समझने की शक्ति जब विकसित हो जाती है तब सामाजिक अभिव्यक्ति के द्वारा परिपक्वता का दर्जा प्राप्त हो जाता है। विभिन्नताओं के बावजूद भी एकरूपता की अपेक्षा के साथ उन्नति की उन्मुक्त उड़ान के सार्थक प्रयास समग्र विकास की अवधारणा को पुष्टि प्रदान करने में अपनी भागीदारी निभाते हैं। स्वयं के गुणों एवं शक्तियों का विश्लेषण करने की योग्यता निश्चित रूप से विकास के विविध आयामों को चुनौतिपूर्ण तरीके से स्वीकार करने हेतु अभिप्रेरित किया करती हैं। वर्तमान आधुनिक युग में व्यक्ति केवल निजी अस्तित्व के बोध तक सीमित होकर नहीं रहना चाहता बल्कि वह सदा के लिए सामाजिक परिदृश्य में अपनी पहचान बनाने की स्थिति को पुरूषार्थ करने की क्षमता से हासि़ल करना चाहता है। समग्र विकास की अवधारणा से उपजते सवाल जीवन मूल्यों के प्रति गहरी आस्था रखते हैं तथा समयानुसार स्थूलता की प्राप्ति के अतिरिक्त सूक्ष्म उपलब्धियों की दिशा में कार्य करने हेतु मनोवैज्ञानिक सहयोग भी प्रदान किया करते हैं।

जीवन के पथ पर जैसे-जैसे गतिशीलता का सानिध्य प्राप्त होता जाता है, अनुभूतियों की विभिन्न स्थितियाँ सम्पूर्ण मनोयोग के साथ यह बताने में समर्थ हो जाया करती हैं जिसमें स्थूलता के बन्धन से मुक्ति तथा सूक्ष्मता के सम्बन्धों की ओर अग्रसर हो जाने के स्पष्ट संकेत एवं संदेश नीहित होते हैं। मानवीय मस्तिष्क एवं हृदय पर विकास का सकारात्मक अथवा नकारात्मक दबाव निरन्तर नहीं पड़े इसलिए स्वयं को निमित्त समझने की सलाह मनोवैज्ञानिक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए प्रदान की जाती है जिससे सुरक्षित प्रगति की स्थितियों को अक्षुण्य बनाये रखा जा सके।

अभिव्यक्ति के विविध साधनों की उत्पत्ति जहाँ एक ओर सम्प्रेषण की क्रियाओं को सुगमता के साथ अग्रसर होने के मार्ग को प्रशस्त करती हैं वहीं सूचनाओं का भण्डार तो स्थानान्तरित हो जाता है परन्तु ज्ञान की वास्तविकता से व्यक्ति कोसों दूर चला जाता है। किसी व्यक्तिगत् अथवा सामाजिक संदर्भो में जब ज्ञान से युक्त गुणों को जीवन में धारण करने के व्यावहारिक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तब समग्र विकास की नैसर्गिक स्थिति को सम्बल प्राप्त हो पाता है। विकसित होने की प्रक्रिया में सूक्ष्म जगत् की मूल्यपरक संभावनाओं की अधिकतम् प्राप्ति इस बात का उदाहरण होता है जिसके अन्तर्गत उन्नति की श्रेष्ठता निरन्तर जीवित स्वरूप में विद्यमान रहती है। सामान्य रूप से विकास की स्थितियों के कई पक्ष अपने विशिष्ट क्षेत्र में किये जाने वाले कार्यो एवं गतिविधियों को व्यक्त करने में संलग्न रहते हैं और उनके द्वारा संतुलित विकास की अवधारणा को महत्व प्रदान किया जाता है। विकास की सुनिश्चित प्रक्रिया एवं उससे सम्बन्धित स्थितियों की विवेचना करने पर यह प्रकट हो जाता है कि किसी क्षेत्र विशेष के अन्तर्गत् विशिष्टता अर्जित करने के लिए समग्र विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य को अपनाते हुए उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा को व्यवहार में परिवर्तित कर गुणात्मक विकास की सात्विकता पर कार्यरत रहना श्रेयस्कर होता है।

मूलभूत सक्षमता : सामाजिक परिदृश्य में स्वयं के विकास का सिद्धान्त उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा से होकर गुजरता है लेकिन बाह्य दबाव की स्थितियाँ जाने-अनजाने स्वरूप में व्यक्ति को वास्तविकता के बोध तक पहुँचने नहीं देती हैं। इस सच्चाई का ज्ञान पारिवारिक एवं सहभागिता के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाने वाले परिजनों को प्रायः नहीं रहता है जिसके अन्तर्गत यह व्यक्त किया जाता है कि केवल आन्तरिक अभिप्रेरणात्मक शक्तियाँ ही मनुष्य के मार्गदर्शन का मुख्य आधार हुआ करती हैं। सामान्य तौर पर व्यक्तिगत् जीवन की स्थितियों का मूल्याँकन स्थूल संसाधनों के आधार पर स्वीकार किया जाता है जबकि सूक्ष्म शक्तियों के प्रति भावनात्मक जुड़ाव को अपने-अपने ढ़ंग से व्यक्त कर दिया जाता है।

प्रारम्भिक अवस्थाओं के दौर में विचार शक्ति अपने शैशवकाल में क्रियाशील रहती है तथा धीरे-धीरे इसमें सिद्धान्त एवं व्यवहार का सम्मिश्रण होने पर परिपक्व स्थितियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जीवन में केवल भावनाएँ अथवा विचारधाएँ ही अपने योगदान से व्यक्ति की मूलभूत सक्षमता में अभिवृद्धि नहीं करती बल्कि संवेदनशील मनःस्थितियों की गतिशीलता में दोनों ही पक्षों का योगदान होता है। जब उन्नति के शिखर पर पहुँचने की आवश्यकता को जीवन की प्रासंगिकता से सम्बद्ध किया जाता है तब आत्मिक स्वरूप की जीवंतता, उन्मुक्तता के परिवेश से सक्षमता हासिल करते हुए उपलब्धि प्राप्त किया करती हैं। विकास के पायदान से उँचाईयों के आकाश में पहुँचने की अभिलाषा व्यक्ति को मूलभूत रूप से सक्षम बनाने में मदद्गार साबित होती है क्योंकि अपने निजी अस्तित्व का बोध और निमित्त स्वरूप की स्थिति का निर्माण जीवन की बोझिलता को समाप्त कर दिया करता है। जीवन

की गतिशीलता के मध्य बन्धनों की स्थितियाँ बाध्यकारी स्वरूप में निर्मित नहीं हो तो निश्चित रूप से आत्मिक सम्बन्धों के आध्यात्मिक भावों की ओर उन्मुख होना आसान हो जाता है जहाँ उन्नति के लिए उन्मुक्तता का वातावरण स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है।

विधिवत मूल्याँकन : वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में व्यक्तिगत् जीवन की प्रगति से सम्बन्धित स्थितियाँ होती हैं जो समाज में अपने अस्तित्व के साथ प्रकट होती रहती हैं। स्वयं की उन्नति के लिए वास्तविक अस्तित्व का बोध और निमित्त स्वरूप की स्मृति का अनुपालन होता है जिसमें क्षमताओं के ज्ञान होने के साथ 'मैं पन' की स्थिति से मुक्ति के मार्ग को स्थापित किया जा सकता है। उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा को प्रारम्भिक तौर पर अभिव्यक्त करते हुए इस बात के स्पष्ट संकेत प्रदान किये जाते हैं जिसके अन्तर्गत् विभिन्न स्थितियों में मूल्याँकन के स्वरूप विद्यमान होते हैं। सामान्यतः भौतिक रूप से किसी व्यवस्था अथवा वैचारिक स्थितियों का मूल्याँकन करना आसान होता है लेकिन उसका विधिवत् तरीके से परीक्षण करते हुए किसी निष्कर्ष तक पहुँचना कठिन कार्य होता है। जीवन के वास्तविक संदर्भ में सैद्धान्तिक पक्षों के लिए नियम एवं संयम के अनुपालन की स्थिति महत्वपूर्ण होती है जबकि व्यावहारिक स्थितियों के लिए अन्ततः व्यक्तिगत् रूप से कितना कुछ स्वीकार करते हुए परिवर्तन के प्रति आस्था व्यक्त की गयी है यह सात्विकता अनिवार्य बन जाया करती है। व्यक्तिगत् स्तर पर विभिन्न प्रकार के पुरूषार्थ को जब उन्नति के प्रासंगिक स्वरूप में परिवर्तित करने की कोशिश की जाती है तब सदैव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक स्थितियों में समग्रता के साथ गतिशीलता भी स्थापित हो जाए और उसका प्रमाणित तरीके से मूल्याँकन किया जा सके।

बाह्य मूल्याँकन के बारे में प्रायः यह अनुमान लगाया जाता है कि द्वितीय पक्षकार कुछ विशेषताओं एवं विविध प्रस्तुतीकरण को आधार मानकर अपनी प्रतिपुष्टि को सम्प्रेषित कर देंगें लेकिन आन्तरिक मूल्याँकन के अन्तर्गत् व्यक्तिगत् पुष्टियाँ, सामाजिक, अनुमानों एवं अपेक्षाओं से उपजते परिणामों के विपरीत संतुतियाँ प्रस्तुत करती हैं तब कई स्थितियों में विरोधाभास उत्पन्न हो जाया करते हैं। स्वयं के स्तर पर व्यक्त की गयी टिप्पणियाँ भले ही विचित्र किन्तु सत्य प्रतीत होती हैं, लेकिन उनका निजी मूल्याँकन भाव एवं विचार पक्ष की सत्यता से सम्बद्ध होता है, जिसमें अनावश्यक तर्क एवं विभिन्न प्रसंगों की आवश्यकता लगभग नगण्य हुआ करती है। यदि किसी प्रगतिशील स्थितियों का विधिवत् मूल्याँकन किन्हीं मान्यताओं अथवा धारणाओं के आधार पर किया जाता है तो उसकी वास्तविकता का प्रकटीकरण संभव नहीं हो पाता है जबकि व्यावहारिक स्थितियों को मूलभूत रूप से स्वीकार करते हुए मूल्याँ. कन के लिए पहल किया जाना जीवन के संदर्भित स्वरूप का जीवंत उदाहरण होता है। जीवन की पारदर्शिता को जब उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा से सम्बद्ध किया जाता है तब वास्तविक अस्तित्व का बोध उपयुक्त स्थिति तक स्वयं को स्थापित कर लेता है जिससे निमित्त स्वरूप की अनुभूति को प्रकट किया जा सके जो सही अर्थो में व्यापकता के साथ विधिवत् मूल्याँकन करने की दिशा में सक्षम सिद्ध हो सकता है। कर्मजगत् की व्याख्या को मूल्याँकन की श्रेणी में समाहित करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रेष्ठ कार्य की परिणि ाति संतुष्टता की स्थितियों को आनंद के साथ अभिव्यक्ति प्रदान किया करती हैं।

पारदर्शी जीवन : सभ्यता के विकास की गतिशीलता का स्वरूप जब कल्याणकारी स्थितियों के लिए अपनी भूमिका निभाने का प्रयास करता है, तब मानव जाति की समस्त प्रगति हेतु उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत् जीवन में अन्तःकरण के द्वारा स्वयं के वास्तविक अस्तित्व का बोध हो जाने पर इस बात की संभावना बढ़ जाया करती है जिसके अन्तर्गत् निजी पुरूषार्थ का उद्देश्य सूक्ष्म जगत् को शक्तिशाली बनाने के संदर्भ में किया जाता है। मनुष्य जन्म की सार्थकता को सिद्ध करने हेतु यदि आध्यात्मिक जगत् की रहस्यमयी स्थितियों को स्वीकार करने की सक्षमता को विकसित कर लिया जाए तो इस बात का दबाव समाप्त हो जाता है कि कर्म, के विविध आयाम पर किस प्रकार से अग्रसर हुआ जाए। जीवन में निजता से सम्बद्ध अहम् की समाप्ति हेतु सम्पूर्ण समर्पण के सिद्धान्त का अनुशरण करने पर निमित्त स्वरूप की स्मृति का अधिकतम् सदुपयोग किया जा सकता है। यदि व्यक्तिगत् स्तर के अनुभवों का विश्लेषण किया जाए तो यह ज्ञात हो जाता है कि आन्तरिक शक्तियों के समग्र विकास का परिणाम इतना सार्थक स्वरूप में प्रकट हो जाएगा कि जीवन की पारदर्शिता पूर्ण रूपेण उन्नति का पर्याप्त बन जाएगी।

''सामान्य दृष्टिकोंण को आत्मसात करते हुए जब जीवन की मूलभूत सक्षमता को सामाजिक संदर्भो में स्थापित होने की आवश्यकता अनुसार परिष्कृत किया जाता है तब सन्तुष्टता के स्तर पर कई बार कुठाराघात होने की स्थितियाँ बन जाया करती हैं। स्वयं के द्वारा जीवन के निर्धारण की मनःस्थितियाँ उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचना चाहती हैं लेकिन उन्मुक्त अवस्था की अवधारणा से युक्त वातावरण की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाना पुरूषार्थ की गुणवत्ता को बढ़ाने में मदद्गार सिद्ध होता है। किसी व्यक्ति या व्यवस्था के कार्यो का विधिवत् मूल्याँकन होते रहने से इस तथ्य की पुष्टि प्रमाणित हो जाती है कि जो भी लक्ष्य रखा गया है उसकी पूर्णता हेतु कितने गुणात्मक प्रयास किये गये तथा उनकी प्राप्ति का स्तर विभिन्न अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत् कितने सक्षम स्वरूपों में कार्यरत रहा है। जीवन की पारदर्शिता को अक्षुण्य बनाये रखने हेतु प्रगति के मार्ग पर सतत् रूप से सम्पूर्ण एकाग्रता के साथ गतिशील हो जाने की क्रियाविधि को अपनाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार आत्मिक भाव के साथ किसी भी कार्य के संपादन हेतु स्वयं को निमित्त स्वरूप में स्वीकार करते हुए वास्तविक अस्तित्व के बोध तक सहजता से पहुँचना, उन्नति की उन्मुक्त अवधारणा का परिचायक होता है।

समाज सुधारक और आध्यात्मिक गुरू कबीर

डॉ. हनुमान प्रसाद उत्तम
स्वतंत्र लेखन
योग. प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ
(आयुर्वेद रत्न)
कानपुर नगर, उत्तर प्रदेश

कबीर के बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। उनके समय में कट्टरता और साम्राज्यवाद चरम पर था। इसके बावलूद कबीर पहले और एकमात्र ऐसे कवि हैं जो समाज और लोगों में फैले आडंबरों पर निर्मम प्रहार करते रहे। उनकी प्रतिभा अबाध रूप से प्रखर और अदम्य रही। शायद इसलिए भी कि वह अपने समय की किसी पिछड़ी जाति में जन्मे थे, इस कारण भी वह जैसा देखते, वैसा निसंकोच और बेधड़क कह सकें। कबीर कहां, कब और किस वर्ग में जन्मे, इस संबंध में प्रमाणित जानकारियां ही हैं। मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब किनारे हुआ। एक धारणा के अनुसार कोई विधवा स्त्री इन्हें जन्म देकर लहरतारा तालाब के किनारे छोड़ आई थी।

कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद प्रसिद्ध है–

चौदह सौ पचपन साल गए, चंदवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।
घन गरजें दामिनि दमके बूंदे बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहं कबीर भानु प्रगट भए।।

कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिंदू धर्म की जानकारी और शिक्षा मिली। कहते हैं एक बार पहर भर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। स्वामी रामानंद जी गंगा स्नान के लिए सीढ़ियां उतर रहे थे कि उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुंह से तत्काल 'राम–राम शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा–मंत्र माना और रामानंद जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में–**कासी में हम प्रगट भए, रामानंद चेताए।**

उनके जन्म स्थान के बारे में तीन मत हैं– मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गांव। मगहर इसलिए कि कबीर ने अपनी रचना में वहां का उल्लेख किया है, **'पहिले दर्शन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई' अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर वाराणसी के पास ही है, वहां कबीर की समाधि या मकबरा भी है।** कबीर का अधिकांश जीवन काशी में बीता। काशी में वह जुलाहे के रूप में ही जाने जाते थे। कई कबीरपंथिओं का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ। किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। कई लोग आजमगढ़ जिले के बेलहरा गांव को कबीर साहब का जन्म स्थान मानते हैं। कहते हैं कि बेलहरा का नाम ही बाद में लहरतारा हो गया। फिर भी न तो बेलहरा का ठीक पता चलता है और न यह मालूम हो पाता है कि

बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया ?

इसी तरह माता–पिता के बारे में भी एक राय नहीं है। नीमा और नीरु नामक जुलाहे के घर उनका जन्म हुआ या लहरतारा तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की संतान के रूप में उनका जन्म हुआ, इस बारे में भी मतभेद हैं। कुछ मतों के अनुसार नीमा और नीरू ने केवल उन्हें पाला–पोसा। यह मान्यता बहुत प्रचलित है। शायद इसीलिए उनके मत के इस जाति के पारंपरिक विश्वासों से प्रभावित रहे। यद्यपि जुलाहा शब्द फारसी भाषा का है, लेकिन एक जाति की उत्पत्ति के बारे में कुछ पुराणों में भी चर्चा मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण इस तरह का प्रमुख ग्रंथ है। कबीर ने खुद को जुलाहा तो कई बार कहा, पर मुसलमान कभी नहीं कहा। वे अपने को 'ना–मुसलमान' कहते रहे। निस्संदेह यह ऊंचा आध्यात्मिक भाव है।

जिंदगी तथा धर्म की गूढ़ बातों को जितनी सरलता से उन्होंने रखा, वह कबीर के ही बूते की बात थी क्योंकि वे पढ़ी हुई बातें नहीं, अनुभव की हुई बातें कहते थे। कबीर के अनुसार अपने काम को ही धर्म मानकर कर सके तो मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारे जाने की जरूरत नहीं है। उनके पद की एक पंक्ति में समग्र अध्यात्म आ जाता है। कहा है, **''जस की तस धर दीनी चदरिया।''** ज्ञान की व्यर्थता और भाव की सार्थकता को सिद्ध करते हुए कबीर ने गाया है– **''पोथी पढ– पढ़ जग मुआं, पंडित भयो न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।''** कबीर के बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही होगा। इसके बावजूद कबीर ने कट्टरता पर प्रहार किए। फिर भी कई समीक्षक उन्हें आलोचक संत का दर्जा देने से परहेज करते हैं। आलोचकों का कहना है कि कबीर हमेशा एक द्वंद्व में घिरे नजर आते हैं। कभी वे समाज सुधारक की भूमिका नजर आते हैं और कभी आध्यात्मिक पुरुष के रूप में तो कभी वह एक धर्म के रूप में नजर आते हैं तो कभी दूसरे धर्म के। उनके काव्य से उनकी कोई पहचान बना पाना असंभव नहीं है तो आसान भी नहीं।

कुछ घरेलू उपाय

पंडित श्री कैलाशनारायण
ज्योतिषाचार्य
उज्जैन, मध्य प्रदेश

आंवला : किसी भी रूप में थोड़ा सा आंवला हर रोज खाते रहे, जीवन भर उच्च रक्तचाप और हार्ट फेल नहीं होगा, मुरब्बा हो तो पानी से धुलकर खांना, वात पित्त कफ त्रिदोष संतुलित कर्ता है

मेथी दाना : मेथीदाना पीसकर रख ले,रात काँच के गिलास में डाल दे, और गर्म पानी भर दे, इंसमे त्रिफला भी डाल सकते है, सुबह पीना है, कफ और वात नाशक है, इस से आंव नहीं बनेगी, शुगर कंट्रोल रहेगी और जोड़ो के दर्द नहीं होंगे और पेट ठीक रहेगा, रक्त साफ होगा एवं पतला भी

नेत्र स्नान : मुंह में पानी का कुल्ला भर कर नेत्र धोये ,ऐसा दिन में तीन बार करे।, जब भी पानी के पास जाए,,मुंह में पानी का कुल्ला भर ले, और नेत्रों पर पानी के छींटे मारे, धोये, मुंह का पानी गर्म ना हो इसलिएबार बार कुल्ला नया भरते रहे।

इससे आरोग्य शक्ति बढ़ती हैं, नेत्र ज्योति ठीक रहती हैं।

सरसों का तेल : सर्दियों में हल्का गर्म सरसों तेल और गर्मियों में ठंडा सरसों तेल तीन बूँद दोनों कान में कभी कभी डालते रहे।

इस से कान स्वस्थ रहेंगे।

निद्रा : दिन में जब भी विश्राम करे तो दाहिनी करवट ले कर सोएं। और रात में बायीं करवट ले कर सोये।

दाहिनी करवट लेने से बायां स्वर अर्थात चन्द्र नाड़ी चलेगी, और बायीं करवट लेने से दाहिना स्वर अर्थात सूर्य स्वर चलेगा।

ताम्बे का पानी : रात को ताम्बे के बर्तन में रखा पानी सुबह उठते बिना कुल्ला किये ही पिए, निरंतर ऐसा करने से आप कई रोगो से बचे रहेंगे। ताम्बे के बर्तन में रखा जल, गंगा जल से भी अधिक शक्तिशाली माना गया हैं।

सौंठ : सामान्य बुखार, फ्लू, जुकाम और कफ से बचने के लिए पिसी हुयी आधा चम्मच सौंठ और जरा सा गुड एक गिलास पानी में इतना उबाले के आधा पानी रह जाए।

रात को सोने से पहले यह पिए।

बदलते मौसम, सर्दी व वर्षा के ,आरम्भ में यह पीना रोगो से बचाता हैं। सौंठ नहीं हो तो अदरक का

इस्तेमाल कीजिये।

टाइफाइड : चुटकी भर दालचीनी की फंकी चाहे अकेले ही, चाहे शहद के साथ दिन में दो बार लेने से टाइफाईड नहीं होता।

नाक : रात को सोते समय नित्य सरसों का तेल नाक में लगाये। हर तीसरे दिन दो कली लहसुन रात को भोजन के साथ ले। प्रातः दस तुलसी के पत्ते और पांच काली मिर्च नित्य चबाये। सर्दी, बुखार, श्वांस रोग नहीं होगा ,नाक स्वस्थ रहेगी।

हरड़ : हर रोज एक छोटी हरड़ भोजन के बाद दाँतो तले रखे और इसका रस धीरे धीरे पेट में जाने दे। जब काफी देर बाद ये हरड़ बिलकुल नरम पड़ जाए तो चबा चबा कर निगल ले, इस से आपके बाल कभी सफेद नहीं होंगे, दांत 100 वर्ष तक निरोगी रहेंगे और पेट के रोग नहीं होंगे।

शिवजी की श्री राम भक्ति एवं सती जी का मोह भंग

श्रीराम को शिवजी के समान कोई प्रिय नहीं तथा शिवजी की भक्ति न करने वाला भी श्रीराम को कभी भी स्वप्न में नहीं प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार श्रीराम एवं शिव की भक्ति एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। इसको विशेष रूप से दृष्टिगत रखते हुए श्रीरामचरितमानस में शिवजी की पत्नी दक्षकुमारी सतीजी का श्रीराम की परीक्षा लेने का वर्णन बड़ा ही रहस्यपूर्ण है। सतीजी के पिता दक्ष प्रजापति के द्वारा शिवजी का यज्ञ में भाग न देने एवं शिवजी की निन्दा करने पर सतीजी ने उस समय योगाग्नि में शरीर भस्म कर डाला। तत्पश्चात शिवजी ने यज्ञ विध्वंस करने हेतु वीरभद्र को भेजा आदि का विस्तृत वर्णन दिया जा रहा है।

डॉ. नरेन्द्रमेहता
स्वतंत्र लेखन
उज्जैन (मध्य प्रदेश)

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड ४८

एक बार त्रेतायुग में शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गए। उनके साथ जगज्जनी भवानी (सतीजी) भी थीं। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका अर्चन-पूजन किया। महर्षि अगस्त्यजी ने रामकथा बड़े ही विस्तारपूर्वक शिवजी को सुनाई, जिससे शिवजी को परमानन्द की प्राप्ति हुई। कुछ दिनों तक रामकथा सुनने के पश्चात् शिवजी दक्षकुमारी सतीजी के साथ कैलास की ओर चल पड़े। उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए भगवान् विष्णु (श्रीहरि) ने रघुवंश में अवतार लिया था। श्रीराम पिता के वचन से राज्य को त्यागकर तपस्वी वेष में दण्डकारण्य वन में थे। शिवजी के मन में श्रीराम के दर्शन की प्रबल इच्छा हो रही थी। सतीजी इस बात से अनभिज्ञ थीं। रावण ने ब्रह्माजी से अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथों से माँगी थी तथा प्रभु श्रीराम यह सत्य करना चाहते थे।

रावण ने मारीच को मायावी-कपट मृग बनाकर सीताजी के पास भेजा तथा छलकर सीताजी का हरण कर लिया। मृग को मारकर श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के साथ आश्रम में आए तब उन्हें सीताजी नहीं मिली, आश्रम खाली था। श्रीराम की आँखें भर गईं। श्रीराम का चरित्र-लीलाएँ बड़ी ही विचित्र हैं। उसे श्रेष्ठ ज्ञानी एवं सच्चा श्रीरामभक्त ही समझ सकता है। जो मन्दबुद्धि है वे विशेष रूप से मोह एवं अज्ञान के अंधकार से पीड़ित होने के कारण उनेक चरित्र-लीलाओं को समझ नहीं पाते हैं। संयोगवश शिवजी ने उसी दुःख भरे सीताहरण के बाद श्रीरामजी को देखा और हृदय में अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। शिवजी ने उचित अवसर-समय न जानकर परिचय नहीं किया। जगत् को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द की जय, ऐसा कहकर शिवजी चल पड़े। भोलेनाथ बार-बार आनन्द की अनुभूति कर के सतीजी के साथ चले जा रहे थे।

सतीजी को यह सब देखकर मन में बड़ा सन्देह हुआ कि सृष्टि में सब शिवजी की वन्दना करते हैं फिर शिवजी ने एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द परमधाम कहकर क्यों प्रणाम किया? जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेद रहित है तथा जिसे वेद भी नहीं जानते क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है? देवताओं के हितार्थ विष्

जु भगवान् ने मनुष्य का शरीर धारण किया वे ज्ञान के महासागर-भण्डार है क्या अज्ञानी की तरह एक स्त्री को खोजेंगे। सतीजी ने मन में विचार किया कि शिवजी के वचन कभी भी असत्य नहीं होते हैं। शिवजी तो सर्वज्ञ हैं तथा सतीजी के हृदय में यह सब देखकर अपार सन्देह उत्पन्न हुआ। भवानी (सतीजी) ने यह सन्देह शिवजी के समक्ष प्रकट नहीं किया। किन्तु शिवजी अन्तर्यामी हैं वे सब समझ गए। शिवजी ने सतीजी से कहा सुनो तुम्हारा स्त्री स्वभाव है, अतः ऐसा सन्देह मन में कभी न रखो।

जौ तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू।।
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं।।
जैसें जाहू मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी।।
चलीं सखी सिव आयसु पाई। करहि बिचारु करौं का भाई।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड ५२-१-२

जो तुम्हारे मन में सन्देह है तुम जाकर उनकी परीक्षा क्यों नहीं ले लेती हो? जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बड़ (वटवृक्ष) की छाँह में बैठा रहूँगा। किसी भी प्रकार तुम्हारा यह अज्ञान से भरा भारी भ्रम दूर न हो जाए। विवेक से सोच विचार कर तुम वही करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती वहाँ से चल दी और मन में सोचने लगी कि अब क्या करूँ अर्थात् परीक्षा किस प्रकार लूँ। सतीजी के जाने के बाद शिवजी के मन में ऐसा अनुमान किया कि अब सती का कल्याण नहीं है जबकि मेरे समझाने पर भी इनका सन्देह दूर नहीं हुआ। तब लगता है कि विधाता ही उलटे हैं तथा सती का इसमें कुशल मंगल नहीं है।

लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा।।
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड ५३-१

सतीजी के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मणजी आश्चर्यचकित हो गए और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गम्भीर हो गए, कुछ कह नहीं सके। धीरबुद्धि लक्ष्मण प्रभु श्रीरघुनाथजी के प्रभाव को जानते थे। सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय की बात जानने वाले, देवताओं के देवता, स्वामी श्रीराम सतीजी के कपट को समझ गए। स्त्री स्वभाव के अनुसार सतीजी ने सर्वज्ञ भगवान् श्रीराम से छिपाव किया। तब हँसकर श्रीराम ने अत्यन्त ही मीठी वाणी में कहा-

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रणामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।।
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।।

श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड ५३-४

सर्वप्रथम श्रीराम ने हाथ जोड़कर सतीजी को प्रणाम किया और सतीजी के पिता सहित उनका नाम बताया। फिर कहा कि वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए भ्रमण कर रही हो?

श्रीराम के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर सतीजी को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई शिवजी की बात न मानने और श्रीराम के प्रति अज्ञान होने से भयभीत थीं। सतीजी सोच में पड़

गई कि अब शिवजी को क्या उत्तर दूँगी। इधर श्रीराम ने जान लिया कि सतीजी को दुःख हुआ, तब उन्होंने कुछ अपना प्रभाव प्रकट कर बताया। सतीजी ने मार्ग में जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं। इस समय सीताजी को इसलिए दिखाया कि सतीजी श्रीराम के सच्चिदानंद स्वरूप को देखें, वियोग और दुःख की कल्पना जो उन्हें हुई थी वह दूर हो जाए। सतीजी ने पीछे की ओर घूमकर देखा तो वहाँ भी लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ श्रीराम सुन्दर वेष में दिखाई दिए। सतीजी जिधर देखती उधर ही प्रभु श्रीराम विराजमान हैं तथा मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं। सतीजी ने अनेक प्रकार के वेष धारण किए सभी देवता श्रीराम की चरण वन्दना और सेवा कर रहे हैं। सतीजी को सब जगह श्रीराम, वही लक्ष्मण और वही सीताजी यह सब देखकर बहुत डर गई। वे आँखें मूँद कर अपनी सुध-बुध खोकर मार्ग में बैठ गईं। पुनः आँखें खोलकर देखा तो वहाँ सतीजी को कुछ भी नहीं दीख पड़ा। तब वे बारम्बार श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर शिवजी के पास चल दीं।

जब सतीजी शिवजी के पास पहुँचीं, तब शिवजी ने हँसकर उनसे पूछा कि तुमने श्रीरामजी की किस प्रकार परीक्षा ली। सच-सच बताओ। सतीजी ने श्रीराम के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाया और कहा हे स्वामिन्! मैंने उनकी कोई परीक्षा नहीं ली तथा आपके समान ही प्रणाम किया। आपने जो कुछ श्रीराम के बारे में कहा था, वह सब सत्य है। झूठ नहीं हो सकता। यह सुनकर शिवजी ने ध्यान करके देखा और सतीजी ने जो कुछ चरित्र किया सब कुछ जान गए। शिवजी ने श्रीराम की माया को शीश नवाया, जिसकी प्रेरणा करके सतीजी के मुख से झूठ कहला दिया। शिवजी ने मन में विचार किया कि श्रीहरि इच्छा रूपी भावी प्रबल है।

सतीजी ने सीताजी का वेष धारण किया, यह जानकर शिवजी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने विचार किया कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति मार्ग लुप्त हो जाएगा और बहुत बड़ा अन्याय होता है। यद्यपि सती पवित्र है इसलिए इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने में महापाप होता है। यह सब सोच विचारकर शिवजी कुछ भी नहीं कहते हैं तथा उनके हृदय में बड़ा दुःख होता है। शिवजी ने श्रीरामजी के चरण कमलों में सिर नवाया और श्रीराम का स्मरण करके यह विचार किया कि सती के इस शरीर से मेरी

पति-पत्नी के रूप में भेंट नहीं हो सकती और शिवजी ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया। कैलास को जाते समय एक आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो। आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है? आप श्रीराम के भक्त हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के मन में चिन्ता हुई और उन्होंने बड़े ही सकुचाते हुए शिवजी से पूछा- हे कृपालु! कहिये आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है। सतीजी ने अनेक प्रकार से पूछा किन्तु शिवजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब सतीजी समझ गई कि सर्वज्ञ शिवजी सब कुछ जान गए हैं। मैंने शिवजी से कपट किया है। शिवजी के रुख एवं व्यवहार को देखकर सतीजी समझ गई कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया है और वे व्याकुल हो उठी। शिवजी ने सतीजी को चिन्तायुक्त और दुःखी देखकर उन्हें मार्ग में सुन्दर-सुन्दर कथाएँ और विविध इतिहास बताया तथा कैलास पहुँच गए।

अपनी प्रतिज्ञानुसार शिवजी ने बड़ (वट) के वृक्ष के नीचे अखण्ड और अपार समाधि लगा ली। सतीजी का एक-एक दिन कैलास में युग के समान बीत रहा था। सतीजी को बड़ी आत्मग्लानि हुई कि उन्होंने श्रीराम का अपमान किया तथा पति के वचनों को असत्य समझा। सतीजी ने श्रीराम का स्मरण करके कहा कि आप दुःख को हरने वाले हैं अतः मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह छूट जाए। सत्तासी हजार वर्ष उपरान्त शिवजी ने समाधि खोल दी। शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे तब सतीजी समझ गई कि शिवजी जाग गए हैं। उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों को प्रणाम किया। शिवजी ने उन्हें बैठने के लिए सामने आसन दिया। उसी समय सतीजी के पिता दक्ष प्रजापति बने। ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया। दक्ष को इतना बड़ा पद प्राप्त होने से वह अत्यन्त अभिमानी हो गया।

दक्ष ने सब मुनियों को बुलाकर एक बड़ा यज्ञ करने का निर्णय लिया। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आमन्त्रित किया। दक्ष ने किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता तथा उनकी स्त्रियों सहित आने का निमन्त्रण दिया। विष्णु, ब्रह्मा और शिवजी को छोड़कर सभी देवता अपना विमान सजाकर चले। सतीजी ने आकाश में अनेक विमान जाते देखे तथा उन देवताओं से जाने के स्थान का नाम पूछा। पिता के द्वारा यज्ञ किए जाने की बात सुनकर प्रसन्न हो उठे। सती सोचने लगी कि यदि शिवजी मुझे आज्ञा दें तो मैं इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ। क्योंकि सतीजी के हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था। अन्त में सतीजी ने भय, संकोच और प्रेमरस में भरी वाणी से शिवजी से कहा कि हे प्रभो! मेरे पिता के यहाँ बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ।

शिवजी ने सती से कहा कि तुम्हारे पिता ने हमें न्योता नहीं भेजा है। उन्होंने अपनी सब लड़कियों को न्योता दिया है किन्तु हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया है। एक बार ब्रह्मा की सभा में तुम्हारे पिता हमसे अप्रसन्न हो गए थे, उसी से वे अब हमारा अपमान कर रहे हैं। हे भवानी जो तुम बिना बुलाए जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी।

यद्यपि मित्र प्रभु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न संदेहा।।
तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएं कल्यानु न होई।।

श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड ६२-३

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता है। शिवजी ने सतीजी को अनेक प्रकार से समझाया किन्तु होनहारवश उनके हृदय में बोध नहीं हुआ। तब शिवजी ने सतीजी को अपने मुख्य गणों के साथ उनको विदा कर दिया। सतीजी जब उनके पिता दक्ष के घर पहुँची, तब दक्ष के भय से किसी ने उनकी आवभगत नहीं की, सिर्फ उनकी माता प्रेम से मिली। दक्ष ने सती से कुशल तक नहीं पूछी। जब सती ने यज्ञ में जाकर देखा तो वहाँ कहीं शिवजी का भाग दिखाई नहीं दिया। सतीजी को शिवजी ने जो कहा था वह अब समझ में आया। पति के अपमान की ज्वाला से उसका हृदय जल उठा। सतीजी को क्रोध आया देखकर उसकी माता ने उन्हें बहुत समझाया। सतीजी ने सारी सभा को डाँटकर कहा- हे सभासदों और मुनीश्वरों जिन लोगों ने यहाँ शिवजी की निन्दा की या सुनी है उसका फल उन्हें तुरंत मिलेगा तथा मेरे पिता दक्ष प्रजापति अब पछताएंगे। जहाँ संत, शिवजी और विष्णु भगवान् की निन्दा सुनी जाएँ वहाँ ऐसी मर्यादा है कि अपना वश चले तो उस निन्दा करने वाले की जीभ काट ले और नहीं तो दोनों कान मूँदकर वहाँ से चला जाए। त्रिपुर दैत्य का वध करने वाले महेश्वर सम्पूर्ण जगत् के आत्मा हैं, वे जगत्पिता हैं तथा सबका हित करने वाले हैं। मेरे मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है और मेरा शरीर दक्ष के वीर्य से उत्पन्न है।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू।।
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मरव हाहाकारा।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड ६४-४

अतएव चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले, वृषकेतु शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरन्त ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सतीजी ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डाला। सम्पूर्ण यज्ञशाला में हाहाकार मच गया। सती का मरण सुनकर शिवजी के गण, यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उनकी रक्षा की। ये सब समाचार शिवजी को मिले तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को दण्ड दिया, दक्ष की गति शिवद्रोही के रूप में हुई।

सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा।।
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड ६५-३

सतीजी ने मृत्यु के समय भगवान श्रीहरि से यह वरदान माँगा कि उनका जन्म-जन्म में शिव के चरणों में अनुराग रहें। इसी कारण उन्होंने हिमालय के घर जाकर पार्वतीजी के शरीर से जन्म लिया। सतीजी के जीवन का मार्मिक प्रसंग श्रीरामचरितमानस में अपना विशेष स्थान रखता है। ■

अपेक्षा

समीर उपाध्याय
गुजरात

मां, विवेक और अपेक्षा तीनों का एक छोटा सा परिवार था। विवेक अध्यापक था और उसे पढ़ने– लिखने का बेहद शौक था। पत्नी अपेक्षा भी सिलाई, बुनाई और कढ़ाई में खूब होशियार थी।

अपेक्षा– 'देखिए जी! आज मैंने इस ड्रेस की सिलाई अपने हाथों से की है। उस पर एंब्रायडरी वर्क भी किया है। देखिए तो, यह ड्रेस मुझ पर कितना जचता है!'

विवेक– 'आज मुझे घर से निकलने में बहुत देर हो गई है। अगर स्कूल देर से पहुंचा तो प्रिंसिपल की सुननी पड़ेगी। ऐसा करो शाम को आकर मैं देख लूंगा।'

अपेक्षा अपनी उपेक्षा महसूस करने लगी। अपेक्षा के चेहरे की रेखाएं बदल गई, लेकिन कुछ बोली नहीं। मां ने उसके चेहरे को आसानी से पढ़ लिया।

इतने में पोस्टमैन आया और उसने चार–पांच पत्रिकाएं अपेक्षा के हाथों में थमा दी, जिसमें विवेक की रचनाएं छपी थी। अपेक्षा ने उन पत्रिकाओं को मेज पर रख दिया। आज ही नहीं वह हमेशा ऐसा ही करती थी। मां ने एक के बाद एक पत्रिका को पढ़ा और विवेक की लेखनी की प्रशंसा की। लेकिन अपेक्षा ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

अपेक्षा के बदले हुए व्यवहार को देखकर मां बोली– 'बेटी, जैसे व्यवहार कि हम दूसरों से अपेक्षा रखते हैं वैसा व्यवहार पहले हमें खुद करना पड़ता है। आए दिन विवेक की पत्रिकाएं घर पर आती हैं, लेकिन तुमने एक भी पत्रिका के पन्ने को खोलकर कभी पढ़ा नहीं। विवेक ने तुमसे यह अपेक्षा नहीं की कि तुम उसकी सराहना करो। मैं बेटे का पक्ष नहीं ले रही। लेकिन आज उसे स्कूल पहुंचने में देर हो रही थी। तुम्हारी उपेक्षा का कोई भाव नहीं था। परिस्थिति को देखो और समझा करो। तुम भी मेरी बेटी के समान ही हो। तुम भी सिलाई, बुनाई और कढ़ाई में बहुत ही होशियार हो। लेकिन एक बात को याद रखो कि पति–पत्नी के रिश्ते की बुनियाद होती है एक दूसरे का सम्मान। जैसा दोगे वैसा ही पाओगे। यह कुदरत का क्रम है। सारे दुखों की जड़ है– अपेक्षाएं। रिश्तो में व्यापार को हटा दो। फिर देखो इस छोटे से घरौंदे में ही स्वर्ग की अनुभूति होगी।'

मां की बात को सुनकर अपेक्षा गहरी सोच में पड़ गई।

मेरी अभिव्यक्ति

कविताएं / लघु कथाएं लिखो

पुरस्कार जीतो

सीमित संख्या

द्वितीय पुरस्कार

₹5100/-

प्रथम पुरस्कार

₹11000/-

तृतीय पुरस्कार

₹2500/-

info@gssfoundation.org
74154 10516

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन
GORAKSH SHAKTIDHAM SEVARTH FOUNDATION
अध्यात्म | शिक्षा | संस्कृति

www.gssfoundation.org

पंजीकरण फॉर्म साइट पर उपलब्ध है।